
महाभागा व्रजदेवियाँ
श्रीराधाबाब

Mahabhaga Vrajdeviyan

By

Radha Baba

प्रकाशक

गीतावाटिका प्रकाशन

पो०— गीतावाटिका (गोरखपुर)

पिन—२७३००६

दूरभाष : (०५५१) ३१२४४२, २८४५८२

E-Mail:- rasendu@vsnl.com

प्रथम संस्करण —श्रीराधाष्टमी महोत्सव सं० २००१

द्वितीय संस्करण—श्रीराधाष्टमी महोत्सव सं० २०२७ (गीताप्रेस द्वारा)

तृतीय संस्करण—श्रीराधाबाबा जन्मोत्सव सं० २०५८ वि०

मूल्य : ३० रुपये



श्रीराधा–चरण–वन्दन

यो ब्रह्मरुद्रशुकनारदभीष्ममुख्यैरालक्षितो न सहसा पुरुषस्य तस्य।
सद्यो वशीकरणचूर्णमनन्तशक्तिं, तं राधिकाचरणरेणुमनुस्मरामि।।
मन्मथ–मन्मथ मन मथत जाके सुषमित अंग।
मुख–पंकज–मकरंद नित पियत स्याम–दृग–भृंग।।
जाके अंग–सुगंध कौं नित नासा ललचात।
तन चाहत नित परसिबौ जाकौ मधुमय गात।।
मधु रसमयि बचनावली सुनिबे कौं नित कान।
हरि के लालायित रहत, तजि गुरुता कौ भान।।
जाके मधुर प्रसाद कौ मधु रस चाखन हेतु।
हरि–रसना अकुलात अति तजि दुस्त्यज श्रुति–सेतु।।
जाकी नख–दुति लखि लजत कोटि–कोटि रबि–चंद।
बंदौ तेहि राधा चरन–पंकज सुचि सुखकंद।।

विषय–सूची

प्रकाशकीय निवेदन

इस पुस्तकका प्रथम संस्करण 'व्रजलीलाके नारी पात्र' नामसे छपा था। इसी पुस्तकका दूसरा संस्करण 'महाभागा व्रजदेवियाँ' के नामसे गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित हुआ था। अतः यह तीसरा संस्करण किंचित परिवर्द्धित रूपमें पुनः प्रकाशित उसी नामसे हो रहा है।

परम श्रद्धेय श्रीराधाबाबा द्वारा लिखित एक अन्य महत्त्वपूर्ण पुस्तिका 'श्रीराधा–कृष्ण–लीलाके परिकर' इस पुस्तकके परिशिष्ट(२)में संयुक्त की गयी है।



प्रार्थना

तप्तकाञ्चनगौरांगि ! राधे ! वृन्दावनेश्वरि !
वृषभानुसुते ! देवि ! त्वां नमामि हरिप्रिये !
नवीनां हेमगौरांगीं प्रवरेन्दीवराम्बराम् ।
वृषभानुसुतां वन्दे कृष्णकान्ताशिरोमणिम् ।।
महाभावस्वरूपा त्वं कृष्णप्रियावरीयसी ।
प्रेमभक्तिप्रदे देवि ! राधिके ! त्वां नमाम्यहम् ।।
राधां रासेश्वरीं रम्यां गोविन्दमोहिनीं पराम् ।
कृष्णप्राणाधिके राधे ! नमस्ते परमेश्वरी ।।

तस्या अपाररससारविलासमूर्तेरानन्दकन्दपरमाद्भुतसौख्यलक्ष्म्याः ।
ब्रह्मादिदुर्लभगतेर्वृषभानुजायाः कैंकर्यमेव मम जन्मनि जन्मनि स्यात् ।।
हा ! देवि काकुभरगद्गदयाद्य वाचा याचे निपत्य भुवि दण्डवदुद्भटार्तिः ।
अस्य प्रसादमबुधस्य जनस्य कृत्वा गान्धर्विके तव गणे गणनां विधेहि ।।

गोविन्दवल्लभे ! राधे ! प्रार्थये त्वामहं सदा ।
त्वदीयमिति जानातु गोविन्दो मां त्वया सह ।।
राधे वृन्दावनाधीशे करुणामृतवाहिनि ।
कृपया निजपादाब्जदास्यं मह्यं प्रदीयताम् ।।



श्रीकृष्ण–चरण–वन्दन

(राग भीमपलासी–ताल कहरवा)

राधा–नयन–कटाक्ष–रूप चञ्चल अञ्चलसे नित्य व्यजित।
रहते, तो भी बहती जिनके तनसे स्वेदधार अविरत।।
राधा–अंग–कान्ति अति सुन्दर नित्य निकेतन करते वास।
तो भी रहते क्षुब्ध नित्य, मन करता नव–विलास–अभिलाष।।
राधा मृदु मुसकान–रूप नित मधुर सुधा–रस करते पान।
तो भी रहते नित अतृप्त, जो रसमय नित्य स्वयं भगवान।।
राधा–रूप–सुधोदधिमें जो करते नित नव ललित विहार।
तो भी कभी नहीं मन भरता, पल–पल बढ़ती ललक अपार।।
ऐसे जो राधागत–जीवन, राधामय, राधा–आसक्त।
उनके चरण–कमलमें रत नित रहे हुआ मम मन अनुरक्त।।



नम्र निवेदन

सच्चिदानन्द प्रेमस्वरूप अप्रतिम दिव्य मधुरातिमधुर स्वयं रसरूप भगवान् श्रीकृष्णकी वृन्दावनलीला अत्यन्त ही मधुर और अनिर्वचनीय है। इस लीलामें प्रेमके शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—सभी रसोंका पूर्णतम प्रकाश है। इन रसोंमें वात्सल्य और मधुर——ये दो रस नारी–प्रधान हैं। मधुर रसमें तो केवल नारीकी ही लीला है। इसीलिये भगवान् श्रीकृष्णकी इस मधुर वृन्दावनलीलामें गोपीरूपमें नारीभावकी प्राप्तिके लिये बड़े–बड़े ज्ञानी, भक्त, मुक्त ऋषि–मुनि, देवता, श्रुतियाँ और साक्षात् ब्रह्मविद्यातकने प्रयास किया है, सदा सब करते रहते हैं तथा व्रजमें नारीभावको प्राप्त करके गोपीरूपसे भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर सेवाका अधिकार लाभकर अपनेको धन्यातिधन्य मानते हैं।

श्रीयशोदाजी, श्रीरोहिणीजी तथा उनकी समवयस्का सखी गोपदेवियाँ विशुद्ध वात्सल्यभावसे श्रीकृष्णकी नित्य अनन्यसेवा करती हैं और श्रीराधाजी आदि मधुर भावसे नित्यनिरन्तर सेवापरायणा रहती हैं। ये महाभावरूपा श्रीराधाजी वास्तवमें श्रीकृष्णकी ही अभिन्नस्वरूपा, उन्हींके साक्षात् आनन्दस्वरूप—ह्लादिनी शक्तिरूपकी लीलामयी सजीव प्रतिमा हैं। श्रीराधा और भगवान् श्रीकृष्णमें तत्त्वतः—स्वरूपतः नित्य अभेद है, परन्तु लीलाके क्षेत्रमें इनकी अनादिकालसे नित्य भेदरूपमें ललित लीलाएँ चलती हैं और अनन्तकालतक चलती रहेंगी। विप्रलम्भ और संयोग——दोनों स्वतंत्र रस हैं, तथापि श्रीराधामाधव स्वरूपतः नित्याचिन्त्य, अनिर्वचनीय युगपत् परस्पर–विरोधिधर्मगुणाश्रय होनेके कारण

उनकी मधुर लीलामें ये दोनों ही सदा साथ वर्तमान रहते हैं और नित्य नव–नव रस तथा रसास्वादनका उदय करते रहते हैं।

महाभाग्यवती अगणित गोपरमणियाँ श्रीराधाकी ही कायव्यूहरूपा हैं और सब श्रीराधाजीका ही सेवन, अनुकरण, पदानुसरण करती हुई धन्य होती हैं। इसीसे श्रीमद्भागवतमें इनकी लीलास्थली वृन्दावनकी व्रजगायोंकी तथा इन व्रजदेवियोंकी चरणरजतककी इतनी महिमा और स्तुति की गयी है। स्वयं ब्रह्माजी भगवान् श्रीकृष्णका स्तवन करते हुए कहते हैं—

अहोऽतिधन्या व्रजगोरमण्यः स्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा।
यासां विभो वत्सतरात्मजात्मना यत्तृप्तयेऽद्यापि न चालमध्वराः।।

(श्रीमद्भा० १० । १४ । ३१)

'स्वामिन्! बड़े–बड़े यज्ञ आपको अबतक तृप्त नहीं कर सके, परन्तु व्रजकी गायों और गोपरमणियोंको धन्य है, जिनके बछड़े और बालक बनकर आपने उनके स्तनोंसे निःसृत दुग्ध–सुधाका बड़ी प्रसन्नतासे पान किया है।'

तद् भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां यद् गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम्।
यज्जीवितं तु निखिलं भगवान् मुकुन्दस्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव।।

(श्रीमद्भा० १० । १४ । ३४)

प्रभो! इस वृन्दारण्यमें, विशेष करके गोकुलमें किसी भी (पशु, पक्षी, कीट–पतंग, जड़–वृक्षादि) योनिमें मेरा जन्म हो जाय। यह मेरे लिये बड़े सौभाग्यकी बात होगी; क्योंकि यहाँ जन्म लेनेपर आपके किसी–न–किसी प्रेमीकी चरण–धूलि तो मेरे ऊपर पड़ ही जायगी। इन व्रजवासियोंका जीवन आपका ही जीवन है। आप ही इनके सब कुछ हैं, अतः इनकी चरण–रज आपकी ही चरण–रज है। आपकी चरण–रजको तो श्रुतियाँ अनादिकालसे ढूँढ़ रही हैं।'

श्रीशुकदेवीजीने यशोदा आदिकी प्रशंसा करते हुए कहा है—

नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यंगसंश्रया।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत्प्राप विमुक्तिदात्।

(श्रीमद्भा० १० । ९ । २०)

'मुक्तिदाता भगवान् मुकुन्दसे जो कृपाप्रसाद यशोदामैयाको मिला, वैसा न ब्रह्माजीको, न शिवजीको और न नित्य वक्षविहारिणी लक्ष्मीजीको ही कभी प्राप्त हुआ।'

श्रीउद्धवजी तो गोपी–रज–प्राप्तिके लिये लता–ओषधि ही बनना चाहते हैं—

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्।।

या वै श्रियार्चितमजादिभिराप्तकामैर्योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोष्ठ्याम्।
कृष्णस्य तद् भगवतश्चरणारविन्दं न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापम्।।

(श्रीमद्भा० १०। ४७। ६१–६२)

'मेरे लिये तो सर्वोत्तम यही है कि मैं इस वृन्दावनमें कोई छोटी–सी झाड़ी, बेल या जड़ी–बूटी ही बन जाऊँ। ऐसा हो जायेगा तो इन व्रजांगनाओंकी चरणरज निरन्तर मुझपर पड़ती रहेगी। इनकी चरणधूलिमें स्नान करके मैं धन्य हो जाऊँगा। इन गोपरमणियोंकी महिमा क्या कही जाय। जिनका त्याग बड़ा कठिन है उन स्वजनोंका तथा लोक–वेदकी आर्यमर्यादाका सहज ही त्याग करके, इन गोपांगनाओंने भगवान् मुकुन्दकी उस पदवीको—उस प्रेममय स्वरूपको प्राप्त कर लिया, जिसे श्रुतियाँ अनादिकालसे खोज रही हैं, पर प्राप्त नहीं कर पातीं।

'स्वयं श्रीलक्ष्मीजी जिनकी नित्य पूजा करती रहती हैं, ब्रह्मा, शंकर आदि श्रेष्ठ देवता, पूर्णकाम आत्माराम मुनि और बड़े–बड़े योगेश्वर अपने हृदयमें जिनका चिन्तन करते रहते हैं (प्रत्यक्ष पाते नहीं), उन साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंको इन गोपियोंने रासके समय अपने वक्षःस्थलपर धारण किया और साक्षात् उनको हृदयसे लगाकर अपने चिरकालीन तापको शान्त किया।'

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम्।।

(श्रीमद्भा० १०। ४७। ६३)

'नन्दबाबाके व्रजमें निवास करनेवाली व्रजरमणियोंकी चरणधूलिको मैं बार–बार प्रणाम करता हूँ। इन श्रीगोपांगनाओंने भगवान्‌की लीलाकथाके सम्बन्धमें जो गान किया है, वह तीनों लोकोंको पवित्र कर रहा है और सदा पवित्र करता रहेगा।'

ऐसी महिमामयी इन व्रजनारियोंका, जिनमें जगज्जननी श्रीराधाजी मुख्य हैं, श्रीराधारानीकी कृपासे ही इस पुस्तकमें किञ्चित् पुण्यस्मरण किया गया है। यह पुण्यस्मरण समय–समयपर एक संत (श्रद्धेय श्रीराधाबाबा)के द्वारा लिखित है और प्रायः 'कल्याण'में प्रकाशित हो चुका है।

इस पुण्यस्मरणको पढ़कर सभीको यथायोग्य लाभ उठाना चाहिये। यह मेरा सबसे नम्र निवेदन और अनुरोध है।

श्रीराधा–जन्म महोत्सव
गोरखपुर
वि०सं० २०२७

विनीत
हनुमानप्रसाद पोद्दार



प्रार्थना

(राग आसावरी–तीन ताल)

राधाजू ! मोपै आजु ढरौ।
निज, निज प्रीतम की पद–रज–रति मोय प्रदान करौ।
विषम विषय–रस की सब आसा–ममता तुरत हरौ।
भुक्ति–मुक्ति की सकल कामना सत्वर नास करौ।।
निज चाकर–चाकर–चाकर की सेवा दान करौ।
राखौ सदा निकुंज निभृत में, झाडूदार बरौ।।



जगज्जननी श्रीराधा

गोलोकमें आविर्भाव

कल्पका आरम्भ है। आदिपुरुष श्रीकृष्णचन्द्र गोलोकके सुरम्य रासमण्डलमें विराजित हैं। चिदानन्दमय कल्पवृक्षोंकी श्रेणी रासस्थलीकी परिक्रमा कर रही है। वह वेदी सुविस्तीर्ण, मण्डलाकृत समतल एवं सुस्निग्ध है। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम बिखेरकर इसका संस्कार किया गया है। दधि, लाजा, शुक्लधान्य, दूर्वादल—इन मंगल द्रव्योंसे वेदी परिव्याप्त है। दिव्य कदलीस्तम्भ चारों ओर लगे हैं; उन स्तम्भोंपर पट्टसूत्रमें ग्रथित चन्दन–पल्लवोंसे निर्मित वंदनवार बँधा है। रत्नसारनिर्मित तीन कोटि मण्डपोंसे परिवेष्टित वेदीकी शोभा अपरिसीम है। रत्न–प्रदीपोंकी ज्योति, सौरभमय विविध कुसुमोंका सुवास, दिव्य धूपसे निस्सरित सुगन्धित धूम्रराशि, शृंगार–विलासकी अगणित

सामग्री, सुसज्जित शयन-पर्यंकोंकी पंक्ति---इन सबके अन्तरालसे गोलोकविहारीका अनन्त ऐश्वर्य झाँक रहा है, झाँककर देख रहा है—आज अभिनय आरम्भ होनेका समय हुआ या नहीं ? अभिनयके दर्शक चतुर्भुज श्रीनारायण, पञ्चवक्त्र महेश्वर, चतुर्मुख ब्रह्मा, सर्वसाक्षी धर्म, वागधिष्ठात्री सरस्वती, ऐश्वर्य-अधिदेवी महालक्ष्मी, जगज्जननी दुर्गा, जपमालिनी सावित्री---ये सभी तो रंगमचपर आ गये हैं, लीलासूत्रधार श्रीगोविन्द भी उपस्थित हैं; पर सूत्रधारके प्राणसूत्र जिनके हाथ हैं, वे अभी नहीं आयी हैं। देववृन्द आश्चर्य-विस्फारित नेत्रोंसे मञ्च-रासमण्डलकी ओर देखने लगते हैं।

किंतु अब विलम्ब नहीं। देवोंने देखा---गोलोकविहारी श्रीगोविन्द श्रीकृष्णचन्द्रके वामपार्श्वमें एक कम्पन-सा हुआ, नहीं-नहीं, ओह ! एक कन्याका आविर्भाव हुआ है; अतीत, वर्तमान, भविष्यका समस्त सौन्दर्य पुञ्जीभूत होकर सामने आ गया है। आयु सोलह वर्षकी है; सुकोमलतम अंग यौवन-भारसे दबे जा रहे हैं; बन्धुजीव-पुष्प-जैसे अरुण अधर हैं; उज्ज्वल दशनोंकी शोभाके आगे मुक्तापंक्तिकी अमित शोभा तुच्छ, हेय बन जा रही है, शरत्‌कालीन कोटि



राकाचन्द्रोंका सौन्दर्य मुखपर नाच रहा है; ओह ! उस सुन्दर सीमन्त (माँग) की शोभा वर्णन करनेकी सामर्थ्य किसमें है ? चारु पंकजलोचनोंका सौन्दर्य कौन

बतावे ? सुठाम नासा, सुन्दर चन्दन–चित्रित गण्डयुगल—इनकी तुलना किससे करे ? कर्णयुगल रत्नभूषित हैं; मणिमाला, हीरक–कण्ठहार, रत्न–केयूर, रत्नकंकण—इनसे श्रीअंगोंपर एक किरणजाल फैला है; भालपर सिन्दूरबिन्दु कितना मनोहर है। मालतीमाला–विभूषित, सुसंस्कृत केशपाश, उनमें सुगन्धित कबरीभारकी सुषमा कैसी निराली है। स्थलपद्मोंकी शोभा तो सिमिटकर इन युगल चरण–तलोंमें आ गयी है, चरणविन्यास हंसको लज्जित कर रहा है; अनेक आभरणोंसे विभूषित श्रीअंगोंसे सौन्दर्यकी सरिता प्रवाहित हो रही है। रूपधर्षित हुए देववृन्द इस सौन्दर्यको देखते ही रह जाते हैं।

श्रीकृष्णचन्द्रके वामपार्श्वसे आविर्भूत यह कन्या, यह सुन्दरी ही श्रीराधा हैं। 'राधा' नाम इसलिये हुआ कि 'रास' मण्डलमें प्रकट हुई तथा प्रकट होते ही पुष्पचयन कर श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें अर्घ्य समर्पित करनेके लिये 'धावित' हुईं—दौड़ीं—

रासे सम्भूय गोलोके सा दधाव **हरे: पुर:।**
तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिर्द्विजोत्तम॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण ब्र०खं०)

अथवा

कृष्णेन आराध्यत इति राधा।
कृष्णं समाराधयति सदेति राधिका॥

(राधिकोपनिषद्)

'श्रीकृष्ण इनकी नित्य आराधना करते हैं, इसलिये इनका नाम राधा है और श्रीकृष्णकी ये सदा सम्यक्‌रूपसे आराधना करती हैं, इसलिये राधिका नामसे प्रसिद्ध हुई हैं।' अथवा—

स एवायं पुरुषः स्वयमेव समाराधनतत्परोऽभूत्। तस्मात् स्वयमेव समाराधनमकरोत्॥ अतो लोके वेदे श्रीराधा गीयते। ××× अनादिरयं पुरुष एक एवास्ति॥ तदेव रूपं द्विधा विधाय समाराधनतत्परोऽभूत्। तस्मात् तां राधां रसिकानन्दां वेदविदो वदन्ति॥

(सामरहस्योपनिषद्)

'वही पुरुष स्वयं ही अपने–आपकी आराधना करनेके लिये तत्पर हुआ।' आराधनाकी इच्छा होनेके कारण उस पुरुषने अपने–आप ही अपने–आपकी आराधना की। इसीलिये लोक एवं वेदमें श्रीराधा प्रसिद्ध हुई। वह अनादि पुरुष तो एक ही है। किंतु अनादिकालसे ही वह अपनेको दो रूपोंमें बनाकर

अपनी आराधनाके लिये तत्पर हुआ है। इसीलिये वेदज्ञ श्रीराधाको रसिकानन्दरूपा (रसराजकी आनन्दमूर्ति) बतलाते हैं। अथवा—

राधेत्येवं च संसिद्धा राकारो दानवाचकः।
धा निर्वाणं च तद्दात्री तेन राधा प्रकीर्तिता॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णखण्ड)

'राधा' नाम इस प्रकार सिद्ध हुआ—राकार दानवाचक है एवं 'धा' निर्वाणका बोधक है। ये निर्वाणका दान करती हैं, इसीलिये 'राधा' नामसे कीर्तित हुई हैं।

अस्तु, परमात्मा श्रीकृष्णकी प्राणाधिष्ठात्री देवी श्रीराधाका श्रीकृष्णके प्राणोंसे ही आविर्भाव हुआ। ये श्रीकृष्णचन्द्रको अपने प्राणोंसे भी अधिक प्यारी हैं।

प्राणाधिष्ठातृदेवी सा कृष्णस्य परमात्मनः।
आविर्बभूव प्राणेभ्यः प्राणेभ्योऽपि गरीयसी॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण ब्र०ख०)

उसी समय इन्हीं श्रीराधाके लोमकूपोंसे लक्षकोटि गोप-सुन्दरियाँ प्रकट हुईं। वास्तवमें तो यह अविर्भावकी लीला प्रपञ्चकी दृष्टिसे ही हुई। अन्यथा प्रलय, सृजन, फिर संहार, फिर सृष्टि—इस प्रवाहसे उस पार श्रीराधाकी, राधाकान्तकी लीला, उनका नित्य निकुंजविहार तो अनादिकालसे सपरिकर नित्य दो रूपोंमें प्रतिष्ठित रहकर चल रहा है एवं अनन्त कालतक चलता रहेगा। प्रलयकी छाया उसे छू नहीं सकती, सृजनका कम्पन उसे उद्वेलित नहीं कर सकता। श्रीराधाका यह आविर्भाव तो—प्रपञ्चगत कतिपय बड़भागी ऋषियोंकी चित्तभूमिपर कल्पके आरम्भमें उस लीलाका उन्मेष किस क्रमसे हुआ, इसका एक निदर्शनमात्र है।

प्रपञ्चमें अवतरणकी भूमिका

गोलोकेश्वर! नाथ! मेरे प्रियतम! तुमने गोलोककी मर्यादा भंग की है!—नेत्रोंमें अश्रु भरकर रोषकम्पित कण्ठसे श्रीराधाने गोलोकविहारीसे कहा तथा कहकर मौन हो गयीं। श्रीकृष्णचन्द्रने जान लिया—मेरे विरजा-विहारकी घटनासे प्रियाके हृदयमें दुर्जय मानका संचार हो गया है। तथा इस मानसे निर्गत शत-सहस्र आनन्दकी धाराओंमें अवगाहन कर गोलोकविहारी रासेश्वरी श्रीराधाको मनाने चलते हैं।

श्रीकृष्णचन्द्रकी ह्लादिनी शक्ति महाभावस्वरूपा श्रीराधाकी मानलीला, मान-रहस्य प्राकृत मनमें समा ही नहीं सकता। इसे तो प्रेमविभावित चित्त ही ग्रहण करता है। अनन्त जन्मार्जित साधनाके फलस्वरूप चित्तमें यह वासना, इच्छा उत्पन्न होती है कि श्रीकृष्णको मुझसे सुख मिले। इस इच्छाका ही नाम प्रेम है, किंतु यह इच्छा प्राकृत मनकी वृत्ति नहीं है। यह तो उपासनासे निर्मल हुए मनमें जब श्रीकृष्णकी स्वरूप-शक्ति ह्लादिनीप्रधान शुद्ध सत्त्वका आविर्भाव होता है, मन इस शुद्ध सत्त्वसे मिलकर तद्रूप हो जाता है, प्रज्वलित अग्निमें पड़े लोहपिण्डकी भाँति शुद्ध सत्त्व मनके अणु-अणुमें उदय हो जाता है—उस समय उत्पन्न होती है। यह इच्छा—यह प्रेम ही प्राणीका परम पुरुषार्थ है। यह प्रेम गाढ़ होता हुआ, उत्कर्षकी ओर बढ़ता हुआ, क्रमशः स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुरागके रूपमें परिणत होता है। इस अनुरागकी चरम परिणतिको 'भाव' कहते हैं। भावका ऊर्ध्वतर स्तर 'महाभाव' है। इस महाभावकी उच्चतम घनीभूत मूर्ति श्रीराधा हैं। यह महाभाव-महासागर कितना अनन्त—अपरिसीम है, एकमात्र श्रीकृष्णचन्द्रको ही सुख पहुँचानेकी कितनी—कैसी-कैसी उत्ताल तरंगें इसमें उठती हैं, एक-एक तरंग शृंगाररसराजमूर्ति श्रीकृष्णके लिये कितने परमानन्दका सृजन करती है, इसका यत्किञ्चित् अनुमान प्रेमसमसृण मनमें ही सम्भव है। श्रीकृष्ण मनाते हैं और श्रीराधा नहीं मानतीं, उस समय आनन्दरूप श्रीकृष्णके हृदयमें जो सहस्र-सहस्र आनन्द-धाराएँ बहने लगती हैं, उनका परिचय बड़े सौभाग्यसे ही मिलता है तथा परिचय मिलनेपर ही यह प्रत्यक्ष होता है कि इस मानमें स्वार्थमूलक घृणित कुटिलताकी तो गन्ध भी नहीं है, यह तो सर्वथा श्रीकृष्ण-सुखेच्छामयी प्रीतिकी ही एक वैचित्री है।

अस्तु, गोलोकविहारी श्रीकृष्णचन्द्रके मनानेपर भी श्रीराधाका कोप आज शान्त नहीं होता। समीपमें अवस्थित सुशीला, शशिकला, यमुना, माधवी, रति आदि तैंतीस वयस्याओंपर एक आतंक-सा छा जाता है; उन्होंने गोलोकविहारिणीका यह रूप आज ही देखा है। वहींपर खड़ा-खड़ा गोलोकका एक गोप सुदामा भी देख रहा है। अघटन-घटना-पटीयसी योगमाया भी श्रीराधाका यह भाव देख रही हैं; किंतु योगमाया केवल रस ही नहीं ले रही हैं, साथ-ही-साथ लीलामञ्चकी यवनिका भी उठाती जा रही हैं। वे सोचती हैं—उस सुदूर लीलाकी पृष्ठभूमि यहीं निर्मित होगी, युग-युगसे निर्धारित क्रम यही है। बस, यह विचार आते ही वे गोलोकविहारी एवं गोलोकविहारिणी श्रीराधाके सम्मुख श्वेतवाराहकल्पकी अट्ठाईसवीं चतुर्युगीके द्वापरकालीन चित्रपट

सामने रख देती हैं। उस पटमें असुरोंके भारसे धराका पीड़ित होना, ब्रह्माको अपनी करुण कहानी सुनाना, ब्रह्माकी तथा देवताओंकी पुरुषोत्तमसे धरा-भार-हरणकी प्रार्थना करना, गोलोकविहारी पुरुषोत्तमका स्वयं अवतरित होनेका वचन देना, अवतरित होना, श्रीराधाका भी भारतवर्षमें प्रकट होना----इस प्रकार प्रकट लीलाका पूरा विवरण अंकित था। पटकी ओर श्रीराधाने, राधारमणने देखा या नहीं—कहा नहीं जा सकता, किंतु योगमायाको यवनिकासूत्र खींच देनेकी आज्ञा तो मिल गयी। वे पर्दा हटा देती हैं और सुदामा गोपका अभिनय आरम्भ होता है, गोलोकविहारिणी श्रीराधाकी परमानन्ददायिनी लीलाका प्रापञ्चिक जगत्में प्रकाशित होनेका उपक्रम होने लगता है।

श्रीराधाका यह मान सुदामा गोपके लिये असह्य हो जाता है, वह कटु शब्दोंमें गोलोकविहारिणीकी भर्त्सना करने लगता है। श्रीराधा और भी कुपित हो उठती हैं। कोप अन्तरमें सीमित न रहकर वाग्वज्रके रूपमें बाहर निकल पड़ता है। रोषमें भरी श्रीराधा बोल उठती हैं—'सुदाम ! मुझे शिक्षा देने आये हो ? मेरे तप्त हृदयको और भी संतप्त करने आये हो ? यह तो असुरका कार्य है; फिर असुर ही क्यों नहीं बन जाते ? जाओ, सचमुच असुर योनिमें ही कुछ देर घूमते रहो।' सुदामा गोप काँप उठता है, पर साथ ही क्रोधसे नेत्र जलने लगते हैं। वह कह उठता है—'गोलोकेश्वरि ! तुममें सामर्थ्य है, तुमने इस वाग्वज्रसे मुझे नीचे गिरा दिया। ओह ! और कोई दुःख नहीं, किंतु श्रीकृष्णचन्द्रसे तुमने मेरा क्षणिक वियोग करा दिया, मेरे प्राणोंकी सम्पत्ति तुमने ले ली। देवि ! श्रीकृष्णवियोगके दुःखका अनुभव तुम्हें नहीं है; इसीलिये यह दुःख तुमने मुझे दिया है। तो जाओ देवि ! जाओ, एक बार तुम भी श्रीकृष्णवियोगका दुःख अनुभव करो। सुदूर द्वापरमें गोलोकविहारीके लिये देववृन्द प्रतीक्षा करेंगे, इनका अवतरण होगा, उसी समय गोपकन्याके रूपमें भारतवर्षमें तुम भी अवतरित हो जाओ। गोपसुन्दरियोंके रूपमें तुम्हारी ये सखियाँ भी अवतरित हो जायँगी, तुम्हारी चिरसंगिनी रहेंगी, पर श्रीकृष्ण एक शत वर्षोंके लिये तुमसे अलग हो जायँगे। सौ मानववर्ष श्रीकृष्णवियोगका दुःख अनुभव करो; स्वयं अनुभव कर लो—प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रका वियोग-दुःख कोटि-कोटि नरकयन्त्रणाओंसे भी अधिक भीषण होता है !'—यह कहते-कहते सुदामाके नेत्रोंसे अश्रुप्रवाह बह चलता है; गोलोकविहारिणी श्रीराधाके एवं श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें प्रणाम करके वह चलनेके लिये उद्यत होता है; किंतु विह्वल हुई श्रीराधा क्रन्दन कर उठती हैं—

वत्स ! क्व यासीत्युच्चार्य पुत्रविच्छेदकातरा।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण प्र०खं०)

—पुत्रविच्छेदके भयसे कातर हुई पुकारने लगती हैं—'वत्स ! —कहाँ जा रहे हो ?'

श्रीकृष्णचन्द्र सान्त्वना देने लगते हैं—'रासेश्वरि ! प्राणप्रिये ! कृपामयि ! यह शाप नहीं, शापके आवरणमें यह तो विश्वके प्रति तुम्हारा दिया हुआ वरदान है। इसी निमित्तसे हरिवल्लभा वृन्दाका तुलसीरूपमें भारतवर्षमें प्राकट्य होगा, इसी निमित्तसे भारतवर्षके आकाशमें तुम्हारी विधि–हरि–हर-वन्दित चरणनखचन्द्रिका चमक उठेगी; उस ज्योत्स्नासे भारतवर्षमें मधुर लीला–रसकी वह सनातन स्रोतस्विनी प्रवाहित होगी, जिसमें अवगाहन कर प्रपञ्चके जीव अनन्त कालतक शीतल, कृतकृत्य होते रहेंगे; तुम्हारे मोहन महाभाव* की तरंगिणीमें डूबकर मैं भी कृतार्थ होऊँगा। सुदामा तो गोलोकका है, गोलोकमें ही लौटकर, प्रपञ्चमें क्रीड़ा करके आ जायगा, तुम्हारा धन तुम्हें ही मिलेगा। प्राणेश्वरि ! तुम व्याकुल मत हो !'—गोलोकविहारी अपनी प्रियाको हृदयसे लगाकर पीताम्बरसे नेत्र पोंछने लगे।

इस प्रकार रासेश्वरी श्रीराधाके भारतवर्षमें अवतरित होनेकी भूमिका बनी; उनके नित्य रासकी, नित्य निकुञ्जलीलाकी एक झाँकी जगत्‌में प्रकाशित होनेकी प्रस्तावना पूरी हुई।

अवतरण

नृगपुत्र राजा सुचन्द्रका एवं पितरोंकी मानसी कन्या सुचन्द्रपत्नी कलावतीका पुनर्जन्म हुआ। सुचन्द्र तो वृषभानु गोपके रूपमें उत्पन्न हुए एवं कलावती कीर्तिदा गोपीके रूपमें। यथासमय दोनोंका विवाह होकर पुनर्मिलन हुआ। एक तो राजा सुचन्द्र हरिके अंशसे ही उत्पन्न हुए थे; उसपर उन्होंने पत्नी सहित दिव्य द्वादश वर्षोंतक तप करके ब्रह्माको संतुष्ट किया था। इसीलिये कमलयोनिने ही यह वर दिया था—'द्वापरके अन्तमें स्वयं श्रीराधा तुम दोनोंकी पुत्री बनेंगी।' उस वरकी सिद्धिके लिये ही सुचन्द्र वृषभानु गोप बने हैं। इन्हीं वृषभानुमें, इनके जन्मके समय, सूर्यका भी आवेश हो गया; क्योंकि सूर्यने तपस्या कर श्रीकृष्णचन्द्रसे एक कन्या–रत्नकी याचना की थी तथा श्रीकृष्णचन्द्रने संतुष्ट होकर 'तथास्तु' कहा था। इसके अतिरिक्त

---

* प्रेमकी चरम परिणति महाभावकी दो अवस्थाएँ होती हैं—एक संयोगकी, दूसरी वियोगकी। संयोगके समय यह महाभाव 'मोदन' नामसे कहा जाता है, तथा विरहके समय 'मोहन' नामसे।

नित्यलीलाके वृषभानु एवं कीर्तिदा—ये दोनों भी इन्हीं वृषभानु गोप एवं कीर्तिदामें समाविष्ट हो गये; क्योंकि स्वयं गोलोकविहारिणी राधाका अवतरण होने जा रहा है। अस्तु, इस प्रकार योगमायाने द्वापरके अन्तमें रासेश्वरिके लिये उपयुक्त क्षेत्रकी रचना कर दी।

धीरे-धीरे वह निर्दिष्ट समय भी आ पहुँचा। वृषभानु-व्रजकी गोपसुन्दरियोंने एक दिन अकस्मात् देखा—कीर्तिदा रानीके अंग पीले हो गये हैं; गर्भके अन्य लक्षण भी स्पष्ट परिलक्षित हो रहे हैं। फिर तो उनके हर्षका पार नहीं। कानों-कान यह समाचार वृषभानु-व्रजमें सुखस्रोत बनकर फैलने लगा। सभी उत्कण्ठापूर्वक प्रतीक्षा करने लगे।

वह मुहूर्त आया। भाद्रपदकी शुक्ला अष्टमी है; चन्द्रवासर है, मध्याह्न है। कीर्तिदा रानी रत्नपर्यंकपर विराजित हैं। एक घड़ी पूर्वसे प्रसवका आभास-सा मिलने लगा है। वृद्धा गोपिकाएँ उन्हें घेरे बैठी हैं। इस समय आकाश मेघाच्छन्न हो रहा है। सहसा प्रसूतिगृहमें एक ज्योति फैल जाती है—इतनी तीव्र ज्योति कि सबके नेत्र निमीलित हो गये। इसी समय कीर्तिदा रानीने प्रसव किया। प्रसवमें केवल वायु निकला; इतने दिन उदर तो वायुसे ही पूर्ण था। किंतु इससे पूर्व कि कीर्तिदा रानी एवं अन्य गोपिकाएँ आँख खोलकर देखें, उसी वायुकम्पनके स्थानपर एक बालिका प्रकट हो गयी। सूतिकागार उस बालिकाके लावण्यसे प्लावित होने लगा। गोपसुन्दरियोंके नेत्र खुले, उन्होंने देखा—शत-सहस्र शरच्चन्द्रोंकी कान्ति लिये एक बालिकाके कीर्तिदाके सामने पड़ी है, कीर्तिदाके रानीने प्रसव किया है। कीर्तिदा रानीको यह प्रतीत हुआ, —मेरे द्वारा सद्यःप्रसूत इस कन्याके अंगोंमें मानों किसी दिव्यातिदिव्य शतमूली-प्रसूनकी आभा भरी हो, अथवा रत्नवर्णकी तडिल्लहरी ही बालिकारूपमें परिणत हो गयी हो। आनन्दविवशा कीर्तिदा रानी कुछ बोलना चाहती हैं, पर बोल नहीं पातीं। मन-ही-मन दो लक्ष गोदानोंका संकल्प करती हैं। गोपियोंने गवाक्ष-रन्ध्रसे झाँककर देखा—चारों ओर दिव्य पुष्पोंका ढेर लगा हुआ है। वास्तवमें ही देववृन्द ऊपरसे नन्दनकानन-जात प्रफुल्ल-कुसुमोंकी वर्षा कर रहे थे। मानों पावसमें ही शरदका विकास हो गया हो—इस प्रकार नदियोंकी धारा निर्मल हो गयी, आकाश-पथकी वह मेघमाला न जाने कहाँ विलीन हो गयी और दिशाएँ प्रसन्न हो उठीं। शीतल-मन्द पवन अरविन्द-सौरभका विस्तार करते हुए प्रवाहित हो चला—मानो राधा-यश-सौरभ दुकूलमें लिये रासेश्वरिके आगमनकी सूचना देते हुए वह पवन घर-घर फिर रहा हो, पर आनन्दवश बेसुध होनेके कारण उसकी गति धीमी पड़ गयी हो।

पुरवासियोंके आनन्दका तो कहना ही क्या है—

महारस पूरन प्रगट्यो आनि।
अति फूलीं घर घर व्रजनारी राधा प्रगटी जानि।।
धाईं मंगल साज सबै लै महा महोच्छव मानि।
आयीं घर वृषभानु गोप के, श्रीफल सोहति पानि।।
कीरति बदन सुधानिधि देख्यौ सुंदर रूप बखानि।
नाचत गावत दै करतारी, होत न हरष अघानि।।
देत असीस सीस चरननि धरि, सदा रहौ सुखदानि।
रस की निधि व्रजरसिक राय सौं करौ सकल दुखहानि।।

× × × ×

आज रावल में जय जयकार।
प्रगट भई वृषभानु गोप कैं श्रीराधा अवतार।।
गृह गृह ते सब चलीं बेग दै गावत मंगलचार।
प्रगट भई त्रिभुवन की सोभा रूप रासि सुखसार।।
निरतत गावत करत बधाई भीर भई अति द्वार।
परमानंद वृषभानुनंदिनी जोरी नंददुलार।।

संयोगकी बात! आज ही कुछ देर पहलेसे करभाजन, शृंगी, गर्ग एवं दुर्वासा—चारों वहाँ आये हुए हैं। गोपोंकी प्रार्थनापर, वृषभानुको आनन्दमें निमग्न करते हुए ये श्रीराधाके ग्रह-नक्षत्रका निर्णय कर रहे हैं—

करभाजन शृंगी जु गर्गमुनि लगन नछत्र बल सोध री।
भए अचरज ग्रह देखि परस्पर कहत सबन प्रतिबोध री।।



सुदि भादौं सुभ मास, अष्टमी अनुराधा के सोध री।
प्रीति जोग, बल बालव करनैं, लगन धनुष बर बोध री।।

बालिकाका नाम रक्खा गया—'राधा'। 'राधिका' नाम वृषभानु एवं कीर्तिदा दोनोंने मिलकर रक्खा—लोहितवर्ण विद्युत्–लहरी–सी अंगप्रभा होनेके कारण। राधा—राधिका नाम जगत्में विख्यात हुआ—

चकार नाम तस्यास्तु भानुः कीर्तिदयान्वितः।
रक्तविद्युत्प्रभा देवी धत्ते यस्मात् शुचिस्मिते।
तस्मात्तु राधिका नाम सर्वलोकेषु गीयते।।
(राधातन्त्र)

गोलोकविहारी श्रीकृष्णचन्द्रके जन्मोत्सवपर जो रसधारा प्रसरित हुई, वह द्विगुणित परिमाणमें रासेश्वरीके जन्मपर उमड़ चली—

जो रस–नन्दभवनमें उमग्यौ, तातैं दूनौं होत री।

राधा–सुधा–धारामें स्थावर–जंगम सभी बह चले—

सुर मुनि नाग धरनि जंगम कौं आनँद अति सुख देत री।
ससि खंजन बिद्रुम सुक केहरि, तिनहि छीनि बल लेत री।।
सूरदास उर बसौ निरंतर राधा माधौ जोरि री।
यह छबि निरखि निरखि सचु पावै, पुनि डारै तृन तोरि री।।

इस प्रकार अयोनिसम्भवा श्रीराधा भूतलपर श्रीवृषभानु एवं कीर्तिदा रानीकी पुत्रीके रूपमें प्रकट हुई।

देवर्षिको दर्शन

वीणाकी झनकारपर हरि–गुण–गान करते हुए देवर्षि नारद व्रजमें घूम रहे हैं। कुछ देर पहले व्रजेश्वर नन्दके घर गये थे। वहाँ नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रके उन्होंने दर्शन किये। दर्शन करनेपर मनमें आया—जब स्वयं गोलोकविहारी श्रीकृष्णचन्द्र भूतलपर अवतरित हुए हैं तो गोलोकेश्वरी श्रीराधा भी कहीं–न–कहीं गोपीरूपमें अवश्य आयी हैं। उन्हीं श्रीराधाको ढूँढ़ते हुए देवर्षि व्रजके प्रत्येक गृहके सामने ठहर–ठहरकर आगे बढ़ते जा रहे हैं। देवर्षिका दिव्य ज्ञान कुण्ठित हो गया है, सर्वज्ञ नारदको श्रीराधाका अनुसंधान नहीं मिल रहा है; मानो योगमाया देवर्षिको निमित्त बनाकर राधा–दर्शनकी यह साधना जगत्को बता रही हो—पहले श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन होते हैं, उनके दर्शनोंसे श्रीराधाके दर्शनकी इच्छा जाग्रत् होती है; फिर श्रीराधाको पानेके

लिये व्याकुल होकर व्रजकी गलियोंमें भटकना पड़ता है। अस्तु, घूमते हुए देवर्षि वृषभानु–प्रासादके सामने आकर खड़े हो जाते हैं। वह विशाल मन्दिर देवर्षिको मानो अपनी ओर आकर्षित कर रहा हो। देवर्षि भीतर प्रवेश कर जाते हैं। वृषभानु गोपकी दृष्टि उनपर पड़ती है। वे दौड़कर नारदके चरणोंमें लोट जाते हैं।

विधिवत् पाद्य–अर्घ्यसे पूजा करके देवर्षिको प्रसन्न अनुभव कर वृषभानु गोप अपने सुन्दर पुत्र श्रीदामको गोदमें उठा लाते हैं, लाकर मुनिके चरणोंमें डाल देते हैं। बालकका स्पर्श होते ही मुनिके नेत्रोंमें स्नेहाश्रु भर आता है; उत्तरीयसे अपनी आँखें पोंछकर उसे उठाकर वे हृदयसे लगा लेते हैं, तथा गद्गद कण्ठसे बालकका भविष्य बतलाते हैं—'वृषभानु ! सुनो, तुम्हारा यह पुत्र नन्दनन्दनका, बलरामका प्रिय सखा होगा।'

तो क्या रासेश्वरी श्रीराधा यहाँ भी नहीं हैं ? वृषभानु उन्हें तो लाया नहीं ?——यह सोचकर निराश–से हुए देवर्षि चलनेको उद्यत हुए। उसी समय वृषभानुने कहा—'भगवन् ! मेरी एक पुत्री है, सुन्दर तो वह इतनी है मानो सौन्दर्यकी खानि कोई देवपत्नी इस रूपमें उतर आयी हो। पर आश्चर्य यह है कि वह अपनी आँखें सदा निमीलित रखती है, हमलोगोंकी बातें भी उसके कानोंमें प्रवेश नहीं करतीं, उन्मादिनी–सी दीखती है; इसलिये हे भगवत्तम ! श्रीचरणोंमें मेरी यह प्रार्थना है कि एक बार अपनी सुप्रसन्न दृष्टि उस बालिकापर भी डालकर उसे प्रकृतिस्थ कर दें।'

आश्चर्यमें भर नारद वृषभानुके पीछे–पीछे अन्तःपुरमें चले जाते हैं। जाकर देखा—स्वर्णनिर्मित सजीव सुन्दरतम प्रतिमा–सी एक बालिका भूमिपर लोट रही है। देखते ही नारदका धैर्य जाता रहा, अपनेको वे किसी प्रकार भी संवरण न कर सके; वे दौड़े तथा बालिकाको उठाकर उन्होंने अंकमें ले लिया। एक परमानन्द–सिन्धुकी लहरें देवर्षिको लपेट लेती हैं, उनके प्राणोंमें अननुभूतपूर्व एक अद्भुत प्रेमका संचार हो जाता है, वे बालिकाको क्रोड़में धारण किये मूर्छित हो जाते हैं। दो घड़ीके लिये तो उनकी यह दशा है, मानो उनका शरीर एक शिलाखण्ड हो। दो घड़ीके पश्चात् जाकर कहीं बाह्यज्ञान होता है तथा बालिकाका अप्रतिम सौन्दर्य निहारकर विस्मयकी सीमा नहीं रहती। वे मन–ही–मन सोचने लगते हैं—'ओह ! ऐसे सौन्दर्यके दर्शन मुझे तो कभी नहीं हुए। मेरी अबाध गति है, सभी लोकोंमें स्वच्छन्द विचरता हूँ; ब्रह्मलोक, रुद्रलोक, इन्द्रलोक——इनमें कहीं भी इस शोभासागरका एक बिन्दु भी मैंने नहीं देखा;

महामाया भगवती शैलेन्द्रनन्दिनीके दर्शन मैंने किये हैं, उनका सौन्दर्य चराचर—मोहन है; किंतु इतनी सुन्दर तो वे भी नहीं ! लक्ष्मी, सरस्वती, कान्ति, विद्या आदि सुन्दरियाँ तो इस सौन्दर्य—पुञ्जकी छाया भी नहीं छू पातीं। विष्णुके हर—विमोहन उस मोहिनी रूपको भी मैंने देखा है, पर इस अतुल रूपकी तुलनामें वह भी नहीं। बालिकाको देखते ही श्रीगोविन्द– चरणाम्बुजमें मेरी जैसी प्रीति उमड़ी, वैसी आजतक कभी नहीं हुई। बस, बस, यही श्रीराधा हैं, निश्चय ही यही श्रीरासेश्वरी हैं।—देवर्षिका अन्तर्हृदय आलोकित हो उठा।

'वृषभानु ! कुछ क्षणके लिये तुम बाहर चले जाओ; बालिकाके सम्बन्धमें मैं कुछ करना चाहता हूँ'—गद्‌गद कण्ठसे देवर्षिने धीरे–धीरे कहा। सरलमति वृषभानु देवर्षिको प्रणाम कर बाहर चले आये। एकान्त पाकर नारदने श्रीराधाका स्तवन आरम्भ किया—'देवि ! महायोगमयि ! महाप्रभामयि ! मायेश्वरि ! मेरे महान् सौभाग्यसे, न जाने किन अनन्त शुभ कर्मोंसे रचित सौभाग्यका फल देने तुम मेरे दृष्टिपथमें उतर आयी हो। देवि ! ये तुम्हारे दिव्य अंग अत्यन्त मोहन हैं, ओह ! इन मधुर अंगोंसे माधुर्यका निर्झर झर रहा है; इस मधुरिमाका एक कण ही उस महाद्भुत रसानन्दसिन्धुका सृजन कर रहा है, जिसमें अनन्त भक्त अनन्त कालतक स्नान करते रहेंगे। देवि ! तुम्हारे इन निमीलित नेत्रोंसे भी सुखकी वर्षा हो रही है, वह सुख बरस रहा है ?— जो नित्य नवीन है। मैं अनुभव कर रहा हूँ, तुम्हारे अन्तर्देशमें सुखका समुद्र लहरा रहा है; उसीकी लहरें नेत्रोंपर, तुम्हारे इस प्रसन्न, सौम्य, मधुर मुखमण्डलपर नाच रही हैं।'

देवर्षिकी वाणी काँप रही है, पर स्तवन करते ही जा रहे हैं—

तत्त्वं विशुद्धसत्त्वासु शक्तिर्विद्यात्मिका परा।
परमानन्दसंदोहं दधती वैष्णवं परम्॥
कलयाऽऽश्चर्यविभवे ब्रह्मरुद्रादिदुर्गमे।
योगीन्द्राणां ध्यानपथं न त्वं स्पृशसि कर्हिचित्॥
इच्छाशक्तिर्ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिस्तवेशितुः।
तवांशमात्रमित्येवं मनीषा मे प्रवर्तते॥

× × × ×

आनन्दरूपिणी शक्तिस्त्वमीश्वरि न संशयः।
त्वया च क्रीडते कृष्णो नूनं वृन्दावने वने॥
कौमारेणैव रूपेण त्वं विश्वस्य च मोहिनी।
तारुण्यवयसा स्पृष्टं कीदृक्ते रूपमद्भुतम्॥

(पद्मपुराण पा०खं०)

'देवि ! तुम्हीं ब्रह्म हो; सच्चिदानन्द ब्रह्मके सत्–अंशमें स्थित सन्धिनी शक्तिकी चरम परिणति—विशुद्ध सत्त्व तुम्हीं हो; विशुद्ध सत्त्वमयी तुममें ही चिदंशकी संवित्–शक्ति, संवित्‌की चरम परिणति विद्यात्मिका पराशक्ति—ज्ञानशक्तिका भी निवास है; तुम्हीं आनन्दांशकी ह्लादिनी शक्ति, ह्लादिनीकी भी चरम परिणति महाभावरूपिणी हो; आश्चर्यवैभवमयी ! तुम्हारी एक कलाका भी ज्ञान ब्रह्म–रुद्रतकके लिये कठिन है, फिर योगीन्द्रगणके ध्यानपथमें तो तुम आ ही कैसे सकती हो। मेरी बुद्धि तो यह कह रही है कि इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति—ये सभी तुम ईश्वरीके अंशमात्र हैं। श्रीकृष्णचन्द्रकी आनन्दरूपिणी शक्ति तुम्हीं हो, तुम्हीं उनकी प्राणेश्वरी हो—इसमें कोई संशय नहीं; तुम्हारे ही साथ निश्चय श्रीकृष्णचन्द्र वृन्दावनमें क्रीड़ा करते हैं। ओह देवि ! जब तुम्हारा कौमार रूप ही ऐसा विश्वविमोहन है, तब वह तरुण रूप कितना विलक्षण होगा !'

कहते–कहते नारदका कण्ठ रुद्ध होने लगता है। प्राणोंमें श्रीराधाके तरुण रूपको देखनेकी प्रबल उत्कण्ठा भर जाती है। वे वहींपर टँगे मणिपालनेमें श्रीराधाको लिटा देते हैं तथा उनकी ओर देखते हुए बारंबार प्रणाम करने लगते हैं, तरुण रूपसे दर्शन देनेके लिये प्रार्थना करते हैं। नारदके अन्तर्हृदयमें मानो कोई कह देता है—'देवर्षे ! श्रीकृष्णकी वन्दना करो, तभी श्रीकृष्णप्रियतमाके नेत्र तुम्हारी ओर फिरेंगे।' देवर्षि श्रीकृष्णचन्द्रकी जय–जयकार कर उठते हैं—

जय कृष्ण मनोहारिन् जय वृन्दावनप्रिय।
जय भ्रूभंगललित जय वेणुरवाकुल॥
जय बर्हकृतोत्तंस जय गोपीविमोहन।
जय कुङ्कुमलिप्तांग जय रत्नविभूषण॥

(पद्मपुराण पा०खं०)

—बस, इसी समय दृश्य बदल जाता है। मणिपालनपर विराजित वृषभानुकुमारी अन्तर्हित हो जाती हैं तथा नारदके सामने किशोरी श्रीराधाका आविर्भाव हो जाता है। इतना ही नहीं, दिव्य भूषण–वसनसे सज्जित अगणित सखियाँ भी वहाँ प्रकट हो जाती हैं, श्रीराधाको घेर लेती हैं। वह रूप ! वह सौन्दर्य !—नारदके नेत्र निमेषशून्य एवं अंग निश्चेष्ट हो जाते हैं, मानो नारद सचमुच अन्तिम अवस्थामें जा पहुँचे हों।

राधाचरणाम्बुकणिकाका स्पर्श कराकर एक सखी देवर्षिको चैतन्य करती है और कहती है—'मुनिवर्य ! अनन्त सौभाग्यसे श्रीराधाके दर्शन तुम्हें

हुए हैं। महाभागवतोंको भी इनके दर्शन दुर्लभ हैं। देखो, ये अब तुम्हारे सामनेसे फिर अन्तर्हित हो जायँगी; प्रदक्षिणा करके नमस्कार कर लो। जाओ। गिरिराज–परिसरमें, कुसुमसरोवरके तटपर एक अशोकलता फूल रही है, उसके सौरभसे वृन्दावन सुवासित हो रहा है, वहाँ उसके नीचे हम सबोंको अर्द्धरात्रिके समय देख पाओगे .... ।'

श्रीराधाका वह कैशोररूप अन्तर्हित हो गया। बाल्य–रूपसे रत्नपालनेपर वे पुनः प्रकट हो गयीं।

द्वारपर खड़े वृषभानु प्रतीक्षा कर रहे थे। जय–जयकारकी ध्वनि सुनकर आश्चर्य कर रहे थे। अश्रुपूरित कण्ठसे देवर्षिने पुकारा, वे भीतर आ गये। देवर्षि बोले—'वृषभानु ! इस बालिकाका यही स्वभाव है; देवताओंकी सामर्थ्य नहीं कि वे इसका स्वभाव बदल दें। किंतु तुम्हारे भाग्यकी सीमा नहीं; जिस गृहमें तुम्हारी पुत्रीके चरणचिह्न अंकित हैं, वहाँ लक्ष्मी–सहित नारायण, समस्त देव नित्य निवास करते हैं।' यह कहकर स्खलित गतिसे नारद चल पड़ते हैं। वीणामें राधायशोगानकी लहरी भरते, आँसू बहाते हुए वे अशोकवनकी ओर चले गये।

× × × ×

उसी दिन कीर्तिदा रानीकी गोदमें पुत्रीको देखकर प्रेमविवश हुए वृषभानु लाड़ लड़ाने लगे। नारदके गानका इतना–सा अंश वृषभानुके कानमें प्रवेश कर गया था 'जय कृष्ण मनोहारिन् !' जानकर नहीं, लाड़ लड़ाते समय यों ही उनके मुखसे निकल गया—जय कृष्ण मनोहारिन् ! बस, भानुकुमारी श्रीराधा आँखें खोलकर देखने लगीं। वृषभानुके हर्षका पार नहीं, कीर्तिदा आनन्दमें निमग्न हो गयीं; उन्हें तो पुत्रीको प्रकृतिस्थ करनेका मन्त्र प्राप्त हो गया। इससे पूर्व जब–जब नन्दगेहिनी यशोदा कीर्तिदासे मिलने आयी हैं, तब–तब भानुकुमारीने आँखें खोल–खोलकर देखा है।

श्रीकृष्णचन्द्र–मिलन

अचानक काली घटाएँ घिर आती हैं। भाण्डीर वनमें अन्धकार छा जाता है। वायु बड़े वेगसे बहने लगती है। तरु–लताएँ काँप उठती हैं। कदम्ब–तमालपत्र छिन्न हो–होकर गिरने लगते हैं। ऐसे समय इसी वनमें एक वटके नीचे व्रजेश्वर नन्द श्रीकृष्णचन्द्रको गोदमें लिये खड़े हैं। उन्हें चिन्ता हो रही है कि श्रीकृष्णकी रक्षा कैसे हो।

गोपोंका गोचारण निरीक्षण करने वे आ रहे थे। श्रीकृष्णचन्द्र साथ

चलनेके लिये मचल गये; किसी प्रकार नहीं माने, रोने लगे। इसीलिये वे उन्हें साथ ले आये थे। यहाँ वनमें आनेपर गोरक्षकोंको तो उन्होंने दूसरे वनकी गायें एकत्र कर वहीं ले आनेके लिये भेज दिया, स्वयं उन गायोंकी सँभालके लिये खड़े रहे। इतनेमें यह झंझावात प्रारम्भ हो गया। कोई गोरक्षक भी नहीं कि उसे गायें सँभलाकर वे भवनकी ओर जायँ; तथा यों ही गायोंको छोड़ भी दें तो जायँ कैसे ? बड़ी–बड़ी बूँदें जो आरम्भ हो गयी हैं। अतः कोई उपाय न देखकर व्रजेश्वर एकान्त मनसे नारायणका स्मरण करने लगते हैं।

मानो कोटि सूर्य एक साथ उदय हुए हों, इस प्रकार दिशाएँ उद्भासित हो जाती हैं; तथा वह झंझावात तो न जाने कहाँ चला गया। नन्दराय आँखें खोलकर देखते हैं—सामने एक बालिका खड़ी है। 'हैं–हैं ! वृषभानुकुमारी ! तू यहाँ इस समय कैसे आयी, बेटी !' व्रजेश्वरने अचकचाकर कहा। किंतु दूसरे ही क्षण अन्तर्हृदयमें एक दिव्य ज्ञानका उन्मेष होने लगता है, मौन होकर वे वृषभानुनन्दिनीकी ओर देखने लगते हैं—कोटि चन्द्रोंकी द्युति मुखमण्डलपर झलमल–झलमल कर रही है, नीलवसन–भूषित अंग हैं; अंगोंपर काञ्ची, कंकण, हार, अंगद, अंगुरीयक, मञ्जीर यथास्थान सुशोभित हैं; चञ्चल कर्णकुण्डल तथा दिव्यातिदिव्य रत्नचूड़ामणिसे किरणें झर रही हैं; अंगोंके तेजका तो कहना ही क्या है, भानुकुमारीकी अंगप्रभासे ही वन आलोकित हुआ है। नन्दरायको गर्गकी वे बातें भी स्मरण हो आयीं; पुत्रके नामकरण–संस्कारसे पूर्व गर्गने एकान्तमें वृषभानुपुत्रीकी महिमा, श्रीराधातत्त्वकी बात बतलायी थी; पर उस समय तो नन्दराय सुन रहे थे, और साथ ही साथ भूलते जा रहे थे; इस समय उन सबकी स्मृति हो आयी, सबका रहस्य सामने आ गया। अञ्जलि बाँधकर नन्दरायने श्रीराधाको प्रणाम किया और बोले—'देवि ! मैं जान गया, पुरुषोत्तम श्रीहरिकी तुम प्राणेश्वरी हो, एवं मेरी गोदमें तुम्हारे प्राणनाथ स्वयं पुरुषोत्तम श्रीहरि ही विराजित हैं; लो, देवि ! ले जाओ; अपने प्राणेश्वरको साथ ले जाओ। किंतु ....।' नन्द कुछ रुक–से गये; श्रीकृष्णचन्द्रके भीति–विजड़ित नयनोंकी ओर उनकी दृष्टि चली गयी थी। क्षणभर बाद बोले—'किंतु देवि ! यह बालक तो आखिर मेरा पुत्र ही है न ! इसे मुझे ही लौटा देना।'—नन्दरायने श्रीकृष्णचन्द्रको श्रीराधाके हस्तकमलोंपर रख दिया। श्रीराधा श्रीकृष्णचन्द्रको गोदमें लिये गहन वनमें प्रविष्ट हो गयीं।

× × × ×

वृन्दावनकी भूमिपर गोलोकका दिव्य रासमण्डल प्रकट होता है। श्रीराधा नन्दपुत्रको लिये उसी मण्डपमें चली आती हैं। सहसा नन्दपुत्र श्रीराधाकी गोदसे अन्तर्हित हो जाते हैं। वृषभानुनन्दिनी विस्मित होकर सोचने लगती हैं—नन्दरायने जिस बालकको सौंपा था—वह कहाँ चला गया ? इतनेमें गोलोकविहारी नित्यकैशोरमूर्ति श्रीकृष्णचन्द्र दीख पड़ते हैं। अपने प्रियतमको देखकर वृषभानुनन्दिनीका हृदय भर आता है, प्रेमावेशसे वे विह्वल हो जाती हैं। श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगते हैं—'प्रिये ! गोलोककी वे बातें भूल गयी हैं या अभी भी स्मरण हैं ? मुझे भी भूल गयी क्या ? मैं तो तुम्हें नहीं भूला। तुम्हें भूल जाऊँ, यह मेरे लिये असम्भव है। मेरे प्राणोंकी रानी ! तुमसे अधिक प्रिय मेरे पास कुछ हो, तब तो तुम्हें भूलूँ। तुम्हीं बताओ, प्राणोंसे अधिक प्यारी वस्तुको कोई कैसे भूल सकता है ? प्राणाधिके ! मेरे जीवनकी समस्त साध एकमात्र तुम्हीं हो। किंतु यह भी कहना नहीं बनता, क्योंकि वास्तवमें हम–तुम दो हैं ही नहीं; जो तुम हो, वही मैं हूँ; जो मैं हूँ वही तुम हो; यह ध्रुव सत्य है—हम दोनोंमें भेद है ही नहीं। जिस प्रकार दुग्धमें धवलता है, अग्निमें दाहिका–शक्ति है, पृथ्वीमें गन्ध है, उसी प्रकार हम दोनोंका अविच्छिन्न सम्बन्ध है। सृष्टिके उस पार ही नहीं, सृष्टिके समय भी मेरी विश्वरचनाका उपादान बनकर तुम मेरे साथ ही रहती हो; तुम यदि न रहो तो फिर मैं सृष्टि रचना करनेमें कभी भी समर्थ न हो सकूँ; कुम्भकार मृत्तिकाके बिना घटकी रचना कैसे करे ? स्वर्णकार सुवर्णके न होनेपर स्वर्णकुण्डलका निर्माण कैसे करे ? तुम सृष्टिकी आधारभूता हो तो मैं उसका अच्युत बीजरूप हूँ। x x x सौन्दर्यमयि ! जिस समय योगसे मैं सर्वबीजस्वरूप हूँ, उस समय तुम भी शक्तिरूपिणी समस्त स्त्रीरूपधारिणी हो x x x अलग दीखनेपर भी शक्ति, बुद्धि, ज्ञान, तेज—इनकी दृष्टिसे भी हम–तुम सर्वथा समान हैं। x x x किंतु यह सब होकर भी, यह तत्त्वज्ञान मुझमें नित्य वर्तमान रहनेपर भी, मेरे प्राण तो तुम्हारे लिये नित्य व्याकुल रहते हैं। प्राणाधिके ! तुम्हें देखकर, तुम्हें पाकर रससिन्धुमें निमग्न हो जाऊँ—इसमें तो कहना ही क्या है; तुम्हारा नाम भी मुझे कितना प्रिय है, यह कैसे बताऊँ ? सुनो, जिस समय किसीके मुखसे केवल 'रा' सुन लेता हूँ, उस समय आनन्दमें भरकर अपने कोषकी बहुमूल्य सम्पत्ति मेरी भक्ति—मेरा प्रेम मैं उसे दे देता हूँ; फिर भी मनमें भयभीत होता हूँ कि मैं तो इसकी वञ्चना कर रहा हूँ, 'रा' उच्चारणका उचित पुरस्कार तो मैं इसे दे नहीं सका; तथा जिस समय वह 'धा'का उच्चारण करता है, उस समय, यह देखकर कि यह मेरी प्रियाका

नाम ले रहा है, मैं उसके पीछे–पीछे चल पड़ता हूँ, केवल नाम–श्रवणके लोभसे; यह 'राधा' नाम मेरे कानोंमें तुम्हारी स्मृतिकी सुधा–धारा बहा देता है; मेरे प्राण शीतल, रसमय हो जाते हैं——

त्वं मे प्राणाधिका राधे प्रेयसी च वरानने।
यथा त्वं च तथाहं च भेदो हि नावयोर्ध्रुवम्।।
यथा क्षीरे च धावल्यं यथाग्नौ दाहिका सति।
यथा पृथिव्यां गन्धश्च तथाहं त्वयि संततम्।।
विना मृदा घटं कर्तुं विना स्वर्णेन कुण्डलम्।
कुलालः स्वर्णकारश्च न हि शक्तः कदाचन।।
तथा त्वया विना सृष्टिमहं कर्तुं न च क्षमः।
सृष्टेराधारभूता त्वं बीजरूपोऽहमच्युतः।।

× × ×

सर्वबीजस्वरूपोऽहं सदा योगेन सुन्दरि।
त्वं च शक्तिस्वरूपा च सर्वस्त्रीरूपधारिणी।।

× × ×

शक्त्या बुद्ध्या च ज्ञानेन मया तुल्या वरानने।

× × ×

'रा'शब्दं कुर्वतस्त्रस्तो ददामि भक्तिमुत्तमाम्।
'धा'शब्दं कुर्वतः पश्चाद्यामि श्रवणलोभतः।।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण कृ० खं०)

इस प्रकार रसिकेश्वर राधानाथ अपनी प्रियाको अतीतकी स्मृति दिलाकर, स्वरूपकी स्मृति कराकर, उन्हींके नामकी सुधासे उनको सिक्त कर प्रियतमा श्रीराधाका आनन्दवर्द्धन करने लगते हैं। राधाभावसिन्धुमें भी तरंगे उठने लगती हैं, भावके आवर्त बन जाते हैं; आवर्त राधानाथको रसके अतल–तलमें डुबाने ही जा रहे थे कि उसी समय माला–कमण्डलु धारण किये जगद्विधाता चतुर्मुख ब्रह्मा आकाशसे नीचे उतर आते हैं, राधा–राधानाथके चरणोंमें वन्दना करते हैं। पुष्करतीर्थमें साठ हजार वर्षोंतक विधाताने श्रीकृष्णचन्द्रकी आराधना की थी, राधाचरणारविन्द–दर्शनका वर प्राप्त किया था। उसी वरकी पूर्तिके लिये एवं राधानाथकी मनोहारिणी लीलामें एक छोटा–सा अभिनय करनेके लिये योगमायाप्रेरित वे ठीक उपयुक्त समयपर आये हैं। अस्तु,

भक्तिनतमस्तक, पुलकितांग, साश्रुनेत्र हुए विधाता बड़ी देरतक तो

भक्तिनतमस्तक, पुलकितांग, साश्रुनेत्र हुए विधाता बड़ी देरतक तो रासेश्वरकी स्तुति करते रहे। फिर रासेश्वरीके समीप गये। अपने जटाजालसे श्रीराधाके युगल चरणोंकी रेणु–कणिका उतारी, रेणुकणसे अपने सिरका अभिषेक किया, पश्चात् कमण्डलु–जलसे चरण–प्रक्षालन करने लगे। यह करके फिर श्रीकृष्णप्रियाका स्तवन आरम्भ किया। न जाने कितने समयतक करते रहे। अन्तमें राधा–मुखारविन्दसे युगल पाद–पद्मोंमें अचला भक्तिका वर पाकर धैर्य हुआ। अब उस लीलाका कार्य सम्पन्न करने चले।

श्रीराधा एवं राधानाथको प्रणामकर दोनोंके बीचमें विधाता अग्नि प्रज्वलित करते हैं। अग्निमें विधिवत् हवन करते हैं। फिर विधाताके द्वारा बताये हुए विधानसे स्वयं रासेश्वर हवन करते हैं। इसके पश्चात् रासेश्वरी,



रासेश्वर दोनों ही सात बार अग्नि–प्रदक्षिणा करते हैं, अग्निदेवको प्रणाम करते हैं। विधाताकी आज्ञा मानकर श्रीराधा एक बार पुनः हुताशन–प्रदक्षिणा करके श्रीकृष्णचन्द्रके समीप आसन ग्रहण करती है। ब्रह्मा श्रीकृष्णचन्द्रको श्रीराधाका पाणिग्रहण करनेके लिये कहते हैं तथा श्रीकृष्णचन्द्र राधा–हस्तकमलको अपने हस्तकमलपर धारण करते हैं। हस्तग्रहण होनेपर श्रीकृष्णचन्द्रने सात वैदिक मन्त्रोंका पाठ किया। इसके पश्चात् श्रीराधा अपना हस्तकमल श्रीकृष्ण–वक्षःस्थलपर एवं श्रीकृष्णचन्द्र अपना हस्तपद्म श्रीराधाके पृष्ठदेशपर रखते हैं तथा श्रीराधा मन्त्र–समूहका पाठ करती हैं। आजानुलम्बित दिव्यातिदिव्य पारिजातनिर्मित कुसुममाला श्रीराधा श्रीकृष्णचन्द्रको पहनाती हैं, एवं श्रीकृष्णचन्द्र सुन्दर मनोहर वनमाला श्रीराधाके गलेमें डालते हैं। यह हो जानेपर कमलोद्भव

श्रीराधाको श्रीकृष्णचन्द्रके वामपार्श्वमें विराजित कर, दोनोंके अञ्जलि बाँधनेकी प्रार्थना कर, दोनोंके द्वारा पाँच वैदिक मन्त्रोंका पाठ कराते हैं। अनन्तर श्रीराधा श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम करती हैं; जैसे पिता विधिवत् कन्यादान करे, वैसे सारी विधि सम्पन्न करते हुए विधाता श्रीराधाको श्रीकृष्ण–करकमलोंमें समर्पित करते हैं। आकाश दुन्दुभि, पटह, मुरज आदि देव–वाद्योंकी ध्वनिसे निनादित होने लगता है, आनन्दनिमग्न देववृन्द पारिजात पुष्पोंकी वर्षा करते हैं; गन्धर्व मधुर गान आरम्भ करते हैं, अप्सराएँ मनोहर नृत्य करने लगती हैं। व्रजगोपोंके, व्रजसुन्दरियोंके सर्वथा अनजानमें ही इस प्रकार वृषभानुनन्दिनी एवं नन्दनन्दनकी विवाहलीला सम्पन्न हो गयी।

× × × ×

भाण्डीर–वनके उन निकुञ्जोंमें रसकी तरंगिणी बह चली; रासेश्वरी श्रीराधा, रासेश्वर श्रीकृष्ण——दोनों ही आनन्द–विभोर होकर उसमें बह चले। जब इस स्रोतमें अन्य रसधाराएँ आकर मिलने लगीं——भावसन्धिका समय आया तो श्रीराधाको बाह्यज्ञान हुआ। वृषभानुनन्दिनी देखती हैं——मेरी गोदमें नन्दरायने जिस पुत्रको सौंपा था, वह तो है; शेष सब स्मृतिमात्र। श्रीकृष्णचन्द्रकी वह कैशोर–मूर्ति अन्तर्हित हो गयी है, पुनः वे बालकरूप हो गये हैं।

× × × ×

नन्दनन्दनको श्रीराधा यशोदारानीके पास ले जाती हैं। 'मैया! वनमें झंझावात आरम्भ हो गया था; बाबा बोले——'तू इसे ले जा, घर पहुँचा दे!' बड़ी वर्षा हुई है; देखो मेरी साड़ी सर्वथा भीग गयी है। मैं अब जाती हूँ; घरसे आये मुझे बहुत देर हो गयी है, मेरी मैया चिन्तित होगी; श्रीकृष्णको सँभाल लो'——यह कहकर वृषभानुनन्दिनीने श्रीकृष्णचन्द्रको यशोदा रानीकी गोदमें रख दिया और स्वयं वृषभानुपुरकी ओर चल पड़ीं। यशोदारानीने देखा——साड़ी वास्तवमें सर्वथा आर्द्र है, प्रबल उत्कण्ठा हुई कि दूसरी साड़ी पहना दूँ; किंतु मैयाका शरीर निश्चेष्ट–सा हो गया——ओह! कीर्तिदाकी पुत्री इतनी सुन्दर है। मैया इस सौन्दर्यप्रतिमाकी ओर देखती ही रह गयीं और प्रतिमा देखते–ही–देखते उपवनके लताजालमें जा छिपी।

× × × ×

वहाँ भाण्डीरवनमें व्रजेश्वर नन्दको इतनी ही स्मृति है कि वर्षाका ढंग हो रहा था, भानुकुमारीके साथ मैंने पुत्रको घर भेज दिया है।

पूर्वराग

योगमायाने रसप्रवाहका एक नया द्वार खोला; वृषभानुनन्दिनी इस बातको भूल गयीं कि श्रीकृष्णचन्द्रसे मेरा कभी मिलन हुआ है। श्रीकृष्णचन्द्र

मेरे नित्य प्रियतम हैं, मैं उनकी नित्य प्राणेश्वरी हूँ—यह स्मृति भी रससिन्धुके अतल तलमें जा छिपी। *

वृषभानुदुलारीमें अब कैशोरका आविर्भाव हो गया है। उनके श्रीअंगोंके दिव्य सौन्दर्यसे भानुप्रासाद तो नित्य आलोकित रहता ही है, वे जिस पथसे वनमें पुष्पचयन करने जाती हैं, उसपर भी सौन्दर्यकी किरणें बिखेर जाती हैं। श्रीमुखके उज्ज्वल स्मितसे पथ उद्भासित हो जाता है। किसीको अनुसन्धान लेना हो, श्रीकिशोरी इस समय किस वनमें हैं—यह जानना हो तो सहज ही जान ले; श्रीअंगोंका दिव्य सुवास बता देगा। सुवाससे उन्मादित, उड़ती हुई भ्रमरपंक्ति संकेत कर देगी—आओ, मेरे पीछे चले चलो; वृषभानुकिशोरी इसी पथसे गयी हैं। अस्तु, आज भी अपने श्रीअंगसौरभसे वनको सुरभित करती हुई वे पुष्पचयन कर रही हैं। साथमें चिरसंगिनी श्रीललिता हैं।

पुष्पित वृक्षोंकी शोभासे प्रसन्न होकर श्रीकिशोरी अकस्मात् पूछ बैठीं—'ललिते ! क्या यही वृन्दावन है ?' 'हाँ बहिन ! कृष्णक्रीड़ाकानन यही है।' बस, किशोरीके हाथसे पुष्पोंका दोना गिर जाता है। ललिता गिरे हुए पुष्पोंको उठाने लगती हैं। 'किसका नाम बताया ?'—भानुदुलारी कम्पित कण्ठसे पुनः पूछती हैं। 'सखि ! यह श्रीकृष्णका क्रीड़ास्थल है'—कहकर ललिता पुष्पोंको किशोरीके अञ्चलमें डालने लगती हैं। 'तो अब लौट चलो, बहुत पुष्प हो गये'—यह कहकर उत्तरकी प्रतीक्षा किये बिना ही किशोरी अन्यमनस्क-सी हुई भवनकी ओर चल पड़ती हैं।

× × × ×

दूसरे दिन श्रीललिताने आकर देखा—किशोरीकी तो विचित्र दशा है। शरीर इतना कृश हो गया है, मानो वे एक पक्षसे निराहार रही हों; कुन्तलराशि पीठपर बिखरी पड़ी है। किशोरीने आज वेणीकी रचना नहीं की; मुख ढाँपे पड़ी है, किसीसे भी बात नहीं करतीं। श्रीललिताने गोदमें लेकर, प्यारसे सिर सहलाकर मुख उघाड़ा, देखा—नेत्र सजल हैं, अरुण हैं, सूचना दे रहे हैं, किशोरी सारी रात जागती रही हैं। बारम्बार ललिताके पूछनेपर भानुदुलारी कुछ कहने चलीं; किंतु

*यह विस्मरण प्राकृत जीवोंके स्वरूप-विस्मरण-जैसा नहीं है। यह मुग्धता तो अखण्ड ज्ञानस्वरूप भगवान्‌में, अखण्ड ज्ञानस्वरूपा भगवतीमें रस-पोषणके लिये रहती है, यथायोग्य प्रकट होती है, छिपती है। यही तो भगवान्‌की भगवत्ता है कि अनेकों विरोधी भाव एक साथ एक समयमें ही उनमें वर्तमान रहते हैं, एक साथ एक समयमें ही उनमें अखण्ड सम्पूर्ण ज्ञान एवं रसमयी मुग्धता—दोनों वर्तमान रहते हैं।

वाणी रुद्ध हो गयी, वे बोल न सकीं। ललिताके शत-शत प्यारसे सिक्त होकर कहीं दो घड़ी बाद वे सखीके प्रति अपना हृदय खोल सकीं। रुद्ध कण्ठसे ही किशोरीने अपनी दशाका यह कारण बताया—

कृष्ण नाम जब ते मैं श्रवन सुन्यौ री आली,
भूली री भवन, हौं तो बावरी भई री।
भरि भरि आवैं नैन, चितहूँ न परत चैन,
मुखहूँ न आवै बैन, तनकी दसा कछु और ही भई री।।
जेतेक नेम धरम कीने री बहुत बिधि,
अंग अंग भई हौं तो स्रवनमई री।
नंददास जाके स्रवन सुनें यह गति भई,
माधुरी मूरति कैधौं कैसी दई री।।

ललिताके नेत्र भी भर आये। भानुदुलारीको हृदयसे लगाकर बड़ी देरतक वे सान्त्वना देती रहीं।

× × × ×

उसी दिन संध्या-समय मन-ही-मन 'कृष्ण-कृष्ण' आवृत्ति करती हुई भानुनन्दिनी उद्यानमें बैठी हैं। इसी समय कदम्बकुञ्जोंमें श्रीकृष्णचन्द्रकी वंशी बज उठती है। वंशीरव किशोरीके कानोंमें प्रवेश करता है। ओह ! यह अमृत-निर्झर ! सुधाप्रवाह !! कहाँसे ? किस ओरसे ? भानु-किशोरीका सारा शरीर थरथर काँपने लगता है—इस प्रकार जैसे शीतकालमें उनपर हिमकी वर्षा हो रही हो; साथ ही अंगोंसे प्रस्वेदकी धारा बह चलती है—इतनी अधिक मात्रामें मानों ग्रीष्मतापसे अंगका अणु-अणु उत्तप्त हो रहा है। कानोंपर हाथ रखकर विस्फारित नेत्रोंसे वे वनकी ओर देखने लगती हैं। दूरसे ललिता किशोरीकी यह दशा देख रही हैं। वे दौड़कर समीप आ जाती हैं। तबतक तो किशोरी बाह्यज्ञानशून्य हो गयी हैं। जब उपवनके वृक्षोंसे, पर्वत-कन्दराओंसे वंशीका प्रतिनाद आना बन्द हो जाता है, तब कहीं किशोरी आँखें खोलकर देखती हैं। ललिताने अपने प्यारसे किशोरीको नहलाकर पूछा—'मेरी लाड़िली बहिन ! सच बता, तुझे क्या हो गया था ? सहसा तेरे अंग ऐसे विवश क्यों हो गये थे ?' लाड़िली उत्तरमें इतना ही कह सकीं—

नादः कदम्बविटपान्तरतो विसर्पन्
को नाम कर्णपदवीमविशन्न जाने।

'ओह ! उस कदम्बवृक्षके अन्तरालसे न जाने कैसी एक ध्वनि आयी,

मेरे कानोंमें प्रविष्ट हो गयी ....

'—आह! कदाचित् उस अमृत–निर्झरके उद्‌गमको मैं देख पाती!'

अतिशय शीघ्रतासे ललिताने कहा—'बावरी! वह तो वंशीध्वनि थी।' इस बार भानुनन्दिनी अत्यधिक उद्विग्न-सी हुई अस्पष्ट स्वरमें तुरंत बोल उठीं—'वह किसीका वंशीनाद था? फिर तो ....।' कहते–कहते लाडिली पुनः मूर्छित हो गयीं।

× × × ×

श्रीकृष्णचन्द्रका चित्रपट हाथमें लिये किशोरी देख रही हैं। नेत्रोंसे झर–झर करता हुआ अनर्गल अश्रुप्रवाह बह रहा है। अञ्चलसे अश्रुमार्जन कर चित्रको देखना चाहती हैं, किंतु इतनेमें ही आँखें पुनः अश्रुपूरित हो जाती हैं। एक बार ही देख सकीं; उसके बाद जो अश्रुधारा बहने लगी, वह रुक नहीं रही है; इसीसे चित्र दीखता नहीं।

श्रीविशाखाने स्वयं इस चित्रको अंकित किया था; अंकित कर अपनी प्यारी सखी श्रीराधाके पास ले आयी थी—इस आशासे कि श्रीराधा श्रीकृष्णचन्द्रका नाम सुनकर उनकी ओर अत्यधिक आकर्षित हो गयी हैं, चित्रपटके दर्शनसे उन्हें सान्त्वना मिलेगी। किंतु परिणाम उल्टा हुआ, भानुकिशोरीकी व्याकुलता और भी बढ़ गयी।

× × × ×

विक्षिप्त-सी हुई भानुकिशोरी प्रलाप कर रही हैं—अग्नि–कुण्ड है, धक्–धक् करती हुई उसमें आग जल रही है; उसमें मैं हूँ, पर जली तो नहीं। जलूँ कैसे? श्याम जलधरकी वर्षा जो हो रही है।

स्नेहसे सिरपर हाथ फेरकर ललिता–विशाखा पूछती हैं—'मेरे हृदयकी रानी! यह क्या कह रही हो?' उत्तरमें भानुनन्दिनी पागलिनीकी तरह हँसने लगती हैं। हँसकर कहती हैं—'सुनोगी? अच्छा सुनो! महामरकतद्युति अंगोंसे शोभा झर रही थी; सिरपर मयूरपिच्छ सुशोभित था, नवकैशोरका आरम्भ ही हुआ था; इस रूपमें वे चित्रपटसे निकले—

वितन्वानस्तन्वा मरकतरुचीनां रुचिरतां।
पटान्निष्क्रान्तोऽभूद् धृतशिखिशिखण्डो नवयुवा।

—कहकर किशोरी मौन हो गयीं। ललिता–विशाखा परस्पर देखने लगीं। कुछ सोचकर ललिता बोलीं—'किशोरी! तुमने स्वप्न तो नहीं देखा है?' यह सुनते ही अविलम्ब भानुनन्दिनी बोल उठती हैं—'स्वप्न था या जागरण, दिवस था या रात्रि—यह तो नहीं जान सकी; जाननेकी शक्ति भी नहीं रह गयी थी। क्योंकि उस समय एक श्याम ज्योत्स्ना फैली थी, ज्योत्स्नामें

वह सागर लहरें ले रहा था। लहरें मुझे भी बहा ले गयीं, चञ्चल लहरियोंपर नाचती हुई मैं भी चञ्चल हो उठी; अब जाननेका अवकाश ही कहाँ था।' भानुकिशोरी इतना कहकर पुनः मौन हो जाती हैं।

× × × ×

'मेरी प्यारी ललिते! तू दूर चली जा; विशाखे! तू मेरे समीपसे हट जा; तुम दोनों मुझे स्पर्श मत करना, मेरी-जैसी मलिनाके स्पर्शसे तुम दोनों भी मलिन हो जाओगी; मेरी छायाका स्पर्श भी तुम्हें मलिन कर देगा।' किशोरी अत्यन्त कातर स्वरमें कह रही हैं—'देखो! तुम कहा करती थीं न कि मैं तुम दोनोंको बहुत प्यार करती हूँ; तो उसी प्यारका प्रत्युपकार चाहती हूँ। तू बाधा मत दे; बल्कि शीघ्र-से-शीघ्र मेरे इस मलिन शरीरका अन्त हो जाय, इसमें सहायक बन जा।'—विकल होकर भानुनन्दिनी यहाँ तक कह गयीं।

ललिता और विशाखा दोनों ही एक साथ रो पड़ीं। रोकर बोलीं—'किशोरी! यह सब सुन-सुनकर हमारे प्राणोंमें कितनी वेदना हो रही है, इसका तुझे ज्ञान नहीं; अन्यथा तेरे मुखसे ऐसे वचन कभी नहीं निकलते।'

× × × ×

भानुनन्दिनीने ललिताके हाथ पकड़ लिये और बोलीं—'बहिन! तू जानती नहीं मैं कितनी अधमा हूँ। अच्छा! सुन ले, मृत्युसे पूर्व उन्हें प्रकट कर देना ही उत्तम है—उस दिन मैंने तुम्हारे मुखसे 'कृष्ण' नाम सुना, सुनते ही मेरा विवेक जाता रहा; यह भी सोच नहीं सकी कि ये 'कृष्ण' कौन हैं। तत्क्षण मन-ही-मन अपना मन, प्राण, जीवन, यौवन—सर्वस्व उन्हें समर्पण कर बैठी; कृष्णनामका मधुपान कर उन्मत्त होने लगी। सोचती थी—वे मिलें या न मिलें, इस कृष्ण नामके सहारे जीवन समाप्त कर दूँगी। किंतु उसी दिन कदम्ब-कुञ्जोंमें वंशी बज उठी तथा ध्वनि सुनकर मेरा मन विक्षिप्त हो गया। अभी दो पहर पूर्व श्रीकृष्णको आत्मसमर्पण कर चुकी थी; पर इतनी देरमें ही बदल गयी, उस वंशीरवके प्रवाहमें बह चली। ऐसी उन्मादिनी हो गयी कि बाह्यज्ञानतक भूल गयी। अबतक वह उन्माद मिटा नहीं है, रह-रहकर मैं सब कुछ भूल जाती हूँ; इस भूलमें ही मैं अपना पूर्वका आत्मसमर्पण भी भूल गयी; वंशीके छिद्रोंपर सुधा बरसानेवालेपर न्यौछावर हो गयी। वह कौन है, नहीं जानती थी; पर उसकी हो गयी, अनेकों कल्पनाएँ करती हुई सुखसमुद्रमें बह चली। इतनेमें ही यह चित्रपट मेरे सामने आया, चित्रकी छवि एक बार ही देख सकी, किंतु देखते ही वह स्निग्ध मेघद्युति पुरुष मेरे हृदयमें, प्राणोंमें समा गया। ओह!

धिक्कार है मुझको, जिसने तीन पुरुषोंको आत्मसमर्पण किया, तीन पुरुषोंको प्यार किया; तीन पुरुषोंके प्रति जिस अधमाके हृदयमें रति उत्पन्न हुई---ऐसे मलिन जीवनसे तो मृत्यु कहीं श्रेयस्कर है—

एकस्य श्रुतमेव लुम्पति मतिं कृष्णेति नामाक्षरं।
सान्द्रोन्मादपरम्परामुपनयत्यन्यस्य वंशीकलः।
एष स्निग्धघनद्युतिर्मनसि मे लग्नः पटे वीक्षणात्।
कष्टं धिक् पुरुषत्रये रतिरभून्मन्ये मृतिं श्रेयसीम्।।

(विदग्धमाधव)

---भानुकिशोरी सुबक-सबककर रोने लगी। किंतु ललिता एवं विशाखाको अब पथ मिल गया। वे उल्लासमें भरकर बोलीं---'किशोरी ! तू भी अजब बावरी है; हम नहीं जानती थीं कि तू इतनी सरला है। अरी ! कृष्णनाम, वंशीध्वनि एवं वह चित्र---ये तीनों तो एक व्यक्तिके हैं। ये तीन थोड़े हैं।'

किशोरीके उत्तप्त प्राणोंमें मानो ललिताने अमृत उँड़ेल दिया; प्राण शीतल हो गये, शीतल प्राण सुखकी नींदमें सो गये---इस प्रकार भानुकिशोरी आनन्द-मूर्छित होकर ललिताकी गोदमें निश्चेष्ट पड़ गयीं।

× × × ×

अब तो किशोरीका यह हाल है कि वे सामने मयूरपिच्छ देख लेती हैं तो शरीरमें कम्प होने लगता है; गुञ्जापुञ्जपर दृष्टि पड़ते ही नयनोंमें जल भर आता है, चीत्कार कर उठती हैं, आकाशमें जब श्याममेघ उठते हैं, उस समय किशोरीको श्रीकृष्णचन्द्रकी गाढ़ स्फूर्ति होकर शत-सहस्र श्रीकृष्णचन्द्र गगनमें नाचते दीखते हैं; किशोरी भुजाएँ उठाकर उड़ने जाती हैं, पर हाय ! पंख नहीं कि उड़ सकें। कभी विरहसे अत्यन्त व्यथित होकर चाहने लगती हैं कि किसी प्रकार मैं श्रीकृष्णको भूल जाऊँ, हृदयसे वह त्रिभंगछबि निकल जाय। केवल चाहती ही नहीं, वास्तवमें श्रीकृष्णको भूलनेके लिये अनेक विषयोंमें मनोनिवेश करने जाती हैं, पर विषय तो भूल जाते हैं, और श्रीकृष्ण नहीं भूलते; वह नवनीरद छवि हृदयसे बाहर नहीं होती। ओह ! सचमुच क्या ही आश्चर्य है—

प्रत्याहृत्य मुनिः क्षणं विषयतो यस्मिन् मनो धित्सते
बालासौ विषयेषु धित्सति ततः प्रत्याहरन्ती मनः।
यस्य स्फूर्तिलवाय हन्त हृदये योगी समुत्कण्ठते
मुग्धेयं किल पश्य तस्य हृदयान्निष्क्रान्तिमाकाङ्क्षति।।

(विदग्धमाधव)

विषयोंसे अपने मनको खींचकर मुनिगण जिन श्रीकृष्णचन्द्रमें क्षणभरके लिये मन लग जानेकी इच्छा करते हैं, उन्हीं श्रीकृष्णचन्द्रमें लगे हुए मनको वहाँसे हटाकर वृषभानुनन्दिनी विषयोंमें लगाना चाहती हैं। ओह! हृदयमें जिन श्रीकृष्णचन्द्रकी लवमात्र स्फूर्तिके लिये योगी उत्कण्ठित रहते हैं, यत्न करते हैं, फिर भी स्फूर्ति नहीं होती, उन्हीं श्रीकृष्णचन्द्रको अपने हृदयसे हटानेके लिये लाड़िली इच्छा कर रही हैं, प्रयत्न कर रही हैं, फिर भी हटा नहीं पातीं।

अस्तु, इधर श्रीराधाकिशोरीकी तो यह दशा है; किंतु श्रीकृष्णचन्द्रकी ओरसे किञ्चित आकर्षण बाहरसे नहीं दीखता। श्रीकृष्णचन्द्रके हृदयमें भी तो वही आँधी चल रही है,* पर प्रेम-विवर्धन-चतुर श्रीकृष्णचन्द्र अपना भाव छिपानेमें पूर्णतया सफल हो रहे हैं। ललिता-विशाखा गन्धतक नहीं पातीं कि किशोरीके लिये इनके मनमें किञ्चिन्मात्र भी स्थान है। विरहसे व्याकुल किशोरीने लज्जा बहा दी, लज्जा छोड़कर श्रीकृष्णचन्द्रको पत्र लिख भेजा; किंतु पत्रके उत्तरमें भी केवल निराशा मिली। किशोरीका हृदय चूर-चूर हो गया, जीवनकी साध समाप्त हो गयी; प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र मुझे इस शरीरसे मिलेंगे, यह आशा शून्यमें विलीन हो गयी। अन्तमें किशोरीके आकुल प्राणोंने यह बताया—'लाड़िली! प्रियतम जीवनमें नहीं मिले, कदाचित् जीवनके उस पार ....। बस, बस, सर्वथा उपयुक्त!' भानुनन्दिनी कलिन्दनन्दिनीका आश्रय लेने चल पड़ीं।

× × × ×

लताजालकी ओटसे श्रीकृष्णचन्द्र भानुनन्दिनीकी विकल चेष्टा देख रहे हैं, हृदय धक्-धक् करने लगता है। रोती हुई भानुकिशोरीने अपने हाथके कंकण निकाले, विशाखाके हाथपर रख दिये—'लो, बहिन! मेरा यह स्मृतिचिह्न मेरी प्यारी ललिताको दे देना।' फिर मुद्रिका उतारी, विशाखाकी अँगुलीमें पहनाने लगीं—'प्राणाधिके! बहिन विशाखे! चिर विदाके समय मेरी यह तुच्छ भेंट तू अस्वीकार मत कर; इस मुद्रिकाको देखकर तू कभी मुझे याद कर लेना, भला!'—विशाखा किशोरीको भुजपाशमें बाँधकर,

*श्रीकृष्णचन्द्र जिस समय वनमें कुसुमोंसे विभूषित चम्पकलता देखते हैं, उस समय अंग काँपने लगते हैं, समस्त चम्पकवन राधाकिशोरीमय बन जाता है; मयूरपिच्छ सिरसे गिर गया, यह ज्ञान नहीं; मधुमंगलने कब माला पहनायी, यह भान नहीं। कदम्बवनके नीरव निकुञ्जोंमें वंशीपर 'राधा-राधा' गाकर अपने विकल प्राणोंको शीतल करते रहते हैं।

फुफकार मारकर रोने लगी।

रुद्धकण्ठसे भानुनन्दिनीने कहा—'तू क्यों रोती है ? बहिन ! यह तो भाग्यकी बात है, इसमें तेरा क्या दोष है ? तूने तो अपनी सारी शक्ति लगा दी, पर प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रका मन फिरा न सकी; मेरे मन्दभाग्यको तू कैसे पलट देगी ? पर अब समय नहीं, हृदयको पत्थर कर ले; मेरी अन्तिम वासना तुझे सुना दे रही हूँ, धैर्य करके सुन ले। तटका वह तमाल तुझे दीख रहा है न ? अच्छी तरह तू देख ले। बहिन ! मैं तो देख नहीं पा रही हूँ, पहले देख चुकी हूँ। इस तमालका वर्ण मेरे प्रियतम–जैसा श्याम है; बस, मेरे लिये इतना ही पर्याप्त है। आह ! तमाल–स्कन्धपर मेरे निष्प्राण शरीरको लिटा देना, मेरी भुजाओंसे तमालस्कन्धको वेष्टितकर सुदृढ़ बन्धन लगा देना, जिससे चिरकालतक मेरा यह शरीर वृन्दावनमें ही तमालशाखापर ही स्थिर रहे। विश्राम करता रहे।

अकारुण्यः कृष्णो यदि मयि तवागः कथमिदं
मुधा मा रोदीर्मे कुरु परमिमामुत्तरकृतिम्।
तमालस्य स्कन्धे सखि कलितदोर्वल्लरिरियं
यथा वृन्दारण्ये चिरमविचला तिष्ठति तनुः।।

(विदग्धमाधव)

—किंतु .... हाँ ! एक बार वह चित्रपट मुझे पुनः दिखा दे। त्रैलोक्यमोहन उस मुखचन्द्रको साक्षात् तो नहीं देख सकी, महाप्रयाणसे पूर्व उस चित्रपटको ही देख लूँ; मेरे प्राण शीतल हो जायँ, उसी त्रिभंगसुन्दर छविमें मैं अनन्तकालके लिये लीन हो सकूँ।'

विशाखाके धैर्यकी सीमा हो चुकी। किंतु उत्तर दिये बिना तो



किशोरीके प्राण यों ही निकल जायँगे। किसी प्रकार सारी शक्ति बटोरकर विशाखा रोती हुई ही रुक-रुककर इतना कह सकी—'लाड़िली! वह चित्रफलक तो घरपर है।'

'आह! इतना सौभाग्य भी नहीं—किशोरीने नेत्र बन्द कर लिये। उनके अंग अवश हो गये, वहीं बैठ गयीं। 'आओ, प्रियतम! प्राणेश्वर! आओ। स्वामिन्! नाथ! एक बार दासीके ध्यानपथमें उतर आओ, दासीका यह अन्तिम मनोरथ तो पूर्ण कर दो।'—किशोरी अस्फुट स्वरमें आवृत्ति करने लगीं।

श्रीकृष्णचन्द्रके भी धैर्यकी सीमा हो गयी। लताजाल फटा। श्रीकृष्णचन्द्र श्रीराधाकिशोरीके सामने आ गये। उन्हें देखते ही किशोरीके दुःखसे जड़वत् हुई विशाखाके प्राण आनन्दसे नाच उठे। 'लाड़िली! लाड़िली! नेत्र खोल! री! देख! प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र आये हैं!' भानुकिशोरीने आँखें खोलीं, देखा—सचमुच प्रियतम श्यामसुन्दर सामने खड़े हैं।

सतीत्व-परीक्षण

व्रजपुरन्ध्रियोंमें भानुकिशोरी एवं श्रीकृष्णचन्द्रके मिलनकी चर्चा कानोंकान फैलने लगी। कोई तो सुनकर आनन्दमें निमग्न हो गयीं, किसीने नाक-भौं सिकोड़ा; व्रजतरुणियोंने तो इसे अपने जीवनका आदर्श बना लिया तथा कोई-कोई चीत्कार कर उठीं—'री भानुनन्दिनी! तुमने यह क्या किया! निर्मल कुलमें ....।'

विशेष करके व्रजमें दो ऐसी थीं, जिन्हें यह मिलन शूलकी तरह व्यथा दे रहा था। उनमें एकके अंगोंपर तो अभी यौवन लहरा रहा था और दूसरी वृद्धा हो चुकी थीं, अनेकों उलट-फेर देख चुकी थीं। दोनोंके मनमें अपने सतीत्वका गर्व था। अनसूया, सावित्रीसे भी अपनेको ऊँचा मानती थीं। भानुकिशोरीकी प्रत्येक चेष्टा ही उन्हें दोषपूर्ण दीखती, पद-पदपर उन्हें भानुदुलारीके चरित्रपर सन्देह होने लगा। वे किशोरीको अपने मापदण्डपर परख रही थीं; उनके सतीत्वके मापदण्डपर किशोरी तुल नहीं रही थीं। वे बेचारी यह नहीं जानती थीं कि भानुनन्दिनीकी सत्तापर ही जगत्‌के अतीत, वर्तमान, भविष्यका समस्त सतीत्व अवलम्बित है। जानें भी कैसे, स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दनकी लीलासूत्रधारिणी अघटन-घटनापटीयसी योगमाया उन्हें जानने जो नहीं दे रही थीं। वे यदि किशोरीके स्वरूपको जान लें तो फिर लीलामाधुर्यका विस्तार कैसे हो? भानुकिशोरीका ज्वलन्त उज्ज्वलतम श्रीकृष्णप्रेम निखरे

कैसे ? अस्तु, इन्हीं दोनोंके कारण किशोरी वीथियोंमें, वनमें, घरपर, घाटपर नित्यचर्चाका विषय बन गयी थीं। यह चर्चा यहाँतक बढ़ गयी कि व्रजतरुणियोंकी सास—तनिक भी घर लौटनेपर विलम्ब हुआ कि बस, भानुकिशोरीका उदाहरण देकर ताना मारतीं—

कब की गई न्हान तुम जमुना, यह कहि कहि रिस पावै।
राधा कौ तुम संग करति हौ, ब्रज उपहास उड़ावै।।
वा है बड़े महर की बेटी, तौ ऐसी कहवावै।
सुनहु सूर यह उनहीं भावै, ऐसे कहति डरावै।।

इधर तो यह सब हो रहा है, किंतु भानुदुलारीके मनपर इनका तिलमात्र भी प्रभाव नहीं। यह उपहास, यह लोकनिन्दा उनकी चित्तधाराको उलट दे, यह तो असम्भव है—

जैसे सरिता मिली सिंधु में उलटि प्रवाह न आवै हो।
तैसे सूर कमलमुख निरखत चित इत उत न डुलावै हो।।

पुर-रमणियाँ देखतीं, इतना उपहास होनेपर भी उन्मादिनी-सी हुई भानु किशोरी, सिरपर स्वर्णकलशी लिये, घाटसे घर, घरसे घाटपर न जाने कितनी बार आयीं और गयीं। उन्हें आश्चर्य नहीं होता, क्योंकि वे कारण जान गयी थीं—

ग्वालिनि कृष्ण दरस सौं अटकी।
बार बार पनघट पै आवति, सिर जमुना जल मटकी।।
मनमोहन को रूप सुधानिधि पिवत प्रेमरस गटकी।
कृष्णदास धन धन्य राधिका, लोकलाज सब पटकी।।

कालिन्दी-तटपर कदम्बकी शीतल छायामें त्रिभंगसुन्दर नन्दनन्दन अवस्थित रहते; किशोरीके नेत्र बरबस उनकी ओर चले जाते, जाकर निमेषशून्य हो जाते—

चितवनि रोके हूँ न रही।
श्यामसुन्दर सिंधु सनमुख सरिता उमगि बही।।
प्रेम सलिल प्रवाह भौंरति, मिति न कहूँ कही।
लोभ लहरि, कटाच्छ घूँघट, पट करार ढही।।
थके पल पथ नाव, धीरज परत नहिं न गही।
मिली सूर सुभाव स्यामहिं, फेरिहूँ न चही।।

विष-अमृतके अनिर्वचनीय एकत्र मिलनकी—भानुकिशोरीकी हृदय-वेदना एवं अन्तःसुखकी संगमित अचिन्त्यधाराकी अनुभूति उन उपहास

करनेवाली कतिपय गोपिकाओंमें न थी, इसीलिये वे लाड़िलीकी आलोचना करती थीं। यह अनुभूति उनके लिये सम्भव भी नहीं थी। जिसके हृदयमें श्रीकृष्णचन्द्रका दिव्य प्रेम जाग्रत् होता है, केवलमात्र उसीको प्रेमके वक्रमधुर पराक्रमका भान होता है, दूसरोंको नहीं—

प्रेमा सुन्दरि नन्दनन्दनपरो जागर्ति यस्यान्तरे।
ज्ञायन्ते स्फुटमस्य वक्रमधुरास्तेनैव विक्रान्तयः।।

(विदग्धमाधव)

किंतु अब यह आलोचना सीमाका उल्लंघन कर रही थी। भानुनन्दिनीकी भर्त्सना आरम्भ हो गयी, उनसे भाँति-भाँतिके प्रश्न किये जाने लगे। इन सबके उत्तरमें भानुदुलारी केवलमात्र रो देतीं, कुछ भी कह नहीं पातीं; वे सम्पूर्णरूपसे समझ भी नहीं पाती थीं कि ये सब क्या कह रहे हैं। भानुकिशोरीका संसार ही जो दूसरा था। अस्तु, लाड़िलीका यह सरल क्रन्दन देखकर और तो नहीं, कानन-अधिष्ठात्री वृन्दादेवी रो पड़ीं; उनके लिये यह असह्य हो गया। रोकर एक दिन उन्होंने श्रीकृष्णचन्द्रसे अपनी व्यथा बतायी। श्रीकृष्णचन्द्रके नेत्रोंसे भी अश्रुके दो बिन्दु ढलक पड़े। वृन्दा तो समझ नहीं पायी कि श्रीकृष्णचन्द्र क्या प्रतिकार करेंगे; किंतु श्रीकृष्णचन्द्रके अंगोंसे झाँककर योगमायाने जान लिया कि अब दृश्य बदलना है। बस, दूसरा खेल आरम्भ हो गया।

× × × ×

'हाय रे हाय ! मेरे नीलमणिको क्या हो गया !'—चीत्कार करती हुई यशोदारानी प्रासादसे संलग्न गोशालाकी ओर दौड़ीं; व्रजेश्वर दौड़े, उपनन्द दौड़े, गोपसुन्दरियाँ दौड़ीं। जाकर देखा—गोशालाके उज्ज्वल मणिप्रांगणमें श्रीकृष्णचन्द्र मूर्छित पड़े हैं। व्रजेश्वरीने पुत्रको गोदमें ले लिया। वे गोपशिशु रोकर बोले—मैया ! हम सभी नाच रहे थे; कन्हैयाको कहीं चोट भी नहीं लगी, पर नाचते-नाचते ही यह गिर पड़ा। श्रीकृष्णचन्द्रके सारे अंग तप रहे हैं, भीषण ज्वरसे नाड़ी धक्-धक् चल रही है; नेत्र निमीलित हैं, मानो ग्रीष्मनिशाकी छाया पड़ गयी और पद्म संचित हो गये।

× × × ×

इधर तो मधुबनकी सीमा आनेतक तथा अन्य दिशाओंमें जहाँतक व्रजेश्वरका राज्य था, जहाँतक मित्रराज्योंकी सीमा थी, सर्वत्र एक घड़ीमें ही व्रजेश्वरके दूतोंने डोंडी पीटकर सूचना दे दी—'व्रजेन्द्रनन्दन रुग्ण हो गये हैं,

जो वैद्य उन्हें स्वस्थ कर दे उसे मुँहमाँगा पुरस्कार गोकुलेश्वर देंगे; व्रजेश्वरका सारा राज्य, सारी सम्पत्ति भी यदि वह लेना चाहे तो व्रजराज तत्क्षण दे डालनेके लिये प्रस्तुत हैं।'

× × × ×

सूचना पाकर सघन वनसे एक तरुण वैद्य आया है। पुरस्कार लेने नहीं, अपने औषधज्ञानका, ज्योतिषविद्याका चमत्कार दिखाने। उसका तेज देखकर सबके आकुल प्राणोंमें आशाकी किरण चमक उठती है। आश्चर्य यह है कि तरुण वैद्यकी आकृति अधिकांशमें यशोदानन्दनके समान है। अविराम अश्रु बहाती हुई यशोदारानीने जब वैद्यको देखा तो सहसा उनके मुखसे निकल पड़ा—बेटा ! नीलमणि ! ....!' पर फिर सँभल गयीं और बोलीं—वैद्यराज ! मेरे प्राण जा रहे हैं; आप जो माँगेंगे, वही दूँगी; मेरे नीलमणिको आप स्वस्थ कर दें। दो घड़ी हो गयी, मेरे नीलमणिकी मूर्च्छा नहीं टूटी।' यह कहती हुई वैद्यके चरणोंसे नीलमणिको छुलाकर, वे विलख–विलखकर रोने लगीं। तरुण वैद्यने वीणाविनिन्दित कण्ठसे कहा—'व्रजेश्वरि ! धैर्य धारण करो, अभी–अभी मैं तुम्हारे पुत्रको स्वस्थ किये देता हूँ; हाँ, मैं जैसे–जैसे कहूँगा, उसी विधानसे सारी व्यवस्था करनी पड़ेगी। और कुछ नहीं, एक नयी कलसी मँगा लो, एवं उस कलसीमें किसी सती स्त्रीसे जल मँगा दो; पर जल भी मैं चाहूँ उस विधिसे ....।'

× × × ×

तरुण वैद्यने कलसी हाथमें ली, एक स्वर्ण–कीलसे उसमें सहस्र छिद्र बनाये; फिर चमकता हुआ एक यन्त्र अपनी झोलीसे निकाला; उस यन्त्रसे श्रीकृष्णचन्द्रके कुञ्चित केशोंकी एक लड़ तोड़ ली। फिर एक–एक केशको जोड़ने लगे। क्षणभरमें ही वह केशतन्तु निर्मित हो गया। उसे लेकर प्रबल वेगसे बहती हुई कालिन्दीके तटपर वे गये। नौकासे उस पार जाकर तमालमूलमें केशतन्तुका एक छोर बाँधा तथा फिर इस पार आकर दूसरे छोरको उसके सामने दूसरे तमालसे सन्नद्ध कर दिया; वह क्षीण केशतन्तु कलिन्दतनयाकी लहरोंसे एक हाथ ऊपर नाचने लगा। यह करके व्रजेन्द्र–गेहिनीसे बोले—'व्रजेश्वरी ! विधान यह है कि कोई सती स्त्री श्रीकृष्णचन्द्रके केशोंसे निर्मित इस तन्तुपर पैर रखती हुई, कलिन्दकन्याके इस पारसे उस पार तीन बार जाय एवं लौट आवे; फिर इस छिद्रपूर्ण कलसीमें जल भरकर वहाँ उस स्थानपर आवे जहाँ श्रीकृष्णचन्द्र मूर्छित होकर गिरे हैं। बस, फिर उसी जलसे मैं तत्क्षण तुम्हारे नीलमणिको चैतन्य कर दूँगा।'

'वैद्यराज ! यह भी कभी सम्भव है !'—यशोदारानी अपने मस्तकपर हाथ रखकर रो पड़ीं। तरुण वैद्यने गम्भीर वाणीमें कहा—'व्रजरानी ! सतीकी महिमा अपार है; वास्तविक सती शून्यमें चल सकती है, आकाशमें जल स्थिर कर सकती है। फिर व्रजपुर तो सतियोंके लिये विख्यात है।'

× × × ×

तो क्या व्रजमें ऐसी कोई सती नहीं, जो यह साहस कर सके ?—कातर कण्ठसे व्रजरानीने पुकारकर कहा और स्वयं वह कलसी भरने चलीं। वैद्यने हाथ पकड़ लिया—'व्रजेश्वरी ! मैं जानता हूँ तुम जल ला सकती हो; पर जननीके लाये हुए जलसे वह कार्य सम्भव जो नहीं। वह जल तो तुम्हारे कुलसे भिन्न किसी अन्य रमणीके हाथका चाहिये।'

तरुण वैद्यने अपार गोपसुन्दरियोंकी भीड़की ओर देखा। एक गोपीने पुकारकर कहा—'इधरी ओर क्या देखते हो ? वैद्यराज ! हम तो श्यामकलंकिनी हैं, हमारे लाये जलसे श्रीकृष्णचन्द्र चैतन्य नहीं होंगे।'

× × × ×

यशोदाकी प्रार्थनापर व्रजप्रसिद्ध सती, वह युवती एवं वृद्धा—दोनों वहाँ आयीं। भानुकिशोरीका उपहास करनेमें अपने सतीत्वके गर्वसे लाड़िलीकी भर्त्सना करनेमें ये ही अग्रगण्या थीं। युवतीने आते ही इठलाकर कलसी उठा ली, जल भरने चली। व्रजसुन्दरियोंकी अपार भीड़ भी पीछे-पीछे चल पड़ी।

केशतन्तुपर चरण रखते ही, तन्तु छिन्न होकर यमुनालहरियोंपर नाचने लगा। नाचकर बह चला; नहीं-नहीं, भानुनन्दिनीकी निन्दा करनेवालीको मैं उस पार नहीं ले जाऊँगा—मानो सिर हिलाकर यह कहते हुए स्पर्शके भयसे भाग निकला। युवतीको यमुनाकी चञ्चल तरंगें बहा ले चलीं। नौकारोहियोंने किसी प्रकार निकाला। उसका सिर नीचा हो गया था। आकर बोली— 'वैद्यराज ! यदि मैं नहीं तो सती सावित्री, सतीशिरोमणि शैलेन्द्रनन्दिनी भी इस विधानसे जल नहीं ला सकतीं। तरुण वैद्यने हँसकर कहा—'देवि ! सतीकी महिमाका तुम्हें ज्ञान नहीं।'

इस बार वृद्धाकी परीक्षा थी। उसी भाँति नये तन्तुका निर्माण कर वैद्यराजने केशसेतुकी रचना की। किंतु जो दशा युवतीकी हुई, वही युवती-जननीकी हुई। व्रजेश्वरीके मुखपर निराशा छा गयी—'हाय, मेरे नीलमणिका क्या होगा ?'

'वैद्यराज ! तुम यदि किसी सतीका परिचय जानते हो तो बताओ—



व्रजरानी तरुण वैद्यकी ओर कातर दृष्टिसे देखकर बोलीं। 'नन्दरानी ! ज्योतिषगणनासे बता सकता हूँ'—कहकर वैद्यराज धरतीपर रेखा अंकित करने लगे। कुछ देरतक विविध चित्र, अनेक यन्त्रोंकी रचना करते रहे। फिर प्रफुल्ल चित्तसे बोल उठे—'नन्दगेहिनी ! चिन्ताकी बात नहीं; इसी व्रजमें एक परम सती हैं, उन सतीकी चरण-रजसे विश्व पावन होगा। उन्हें बुलाओ। उनका नाम 'राधा' है।'

× × × ×

भानुकिशोरीको इस घटनाका पता नहीं। वे तो एकान्त प्रासादमें बैठी कुसुमोंकी माला गूँथ रही हैं। उनके सामने त्रिभंग-ललित प्रियतम श्यामसुन्दरकी मानसमूर्ति है; नेत्र झर रहे हैं और वे प्रियतमको अपने हृदयकी बात सुना रही हैं—

बंधु कि और बलिब आमि।
जीवने मरणे जनमे जनमे प्राणनाथ हैओ तुमि।।
तोमार चरणे आमार पराणे बाँधिल प्रेमेर फाँसी।
सब समर्पिया एक मन हैया निचय हैलाम दासी।।
भावि देखिलाम ए तीन भुवने आर के आमार आछे।
राधा बलि केह सुधाइते नाइ, दाँड़ाब काहार काछे।।
ए कुले ओ कुले दु कुले गोकुले आपना बलिब काय।
शीतल बलिया शरण लइनु, ओ दुटि कमल पाय।।

ना ठेलिओ मोरे अबला बलिये, ये हय उचित तोर।
भाविया देखिनु प्राणनाथ बिने गति ये नाहिक मोर।।
आँखिर निमिखे यदि नाहि देखि, तबे से पराणि मरि।
चण्डीदास कय परशरतन गलाय गाँथिया परि।।

'मेरे प्रियतम ! और मैं तुम्हें क्या कहूँ। बस, इतना ही चाहती हूँ——जीवनमें, मृत्युमें, जन्म–जन्ममें तुम्हीं मेरे प्राणनाथ रहना। तुम्हारे चरण एवं मेरे प्राणोंमें प्रेमकी गाँठ लग गयी है; मैं सब कुछ तुम्हें समर्पित कर एकान्त मनसे तुम्हारी दासी हो चुकी हूँ। मेरे प्राणेश्वर ! मैं सोचकर देखती हूँ——इस त्रिभुवनमें तुम्हारे अतिरिक्त मेरा और कौन है ? 'राधा' कहकर मुझे पुकारनेवाला तुम्हारे सिवा और कोई भी तो नहीं है ! मैं किसके समीप जाकर खड़ी होऊँ ? इस गोकुलमें कौन है, जिसे मैं अपना कहूँ ? सर्वत्र ज्वाला है, एकमात्र तुम्हारे युगलचरण–कमल ही शीतल हैं; उन्हें शीतल देखकर ही मैं तुम्हारी शरणमें आयी हूँ। तुम्हारे लिये भी अब यही उचित है कि मुझ अबलाको चरणोंमें स्थान दे दो; मुझे अपने शीतल चरणोंसे दूर मत फेंक देना। नाथ ! सोचकर देखती हूँ, मेरे प्राणनाथ ! तुम्हारे बिना अब मेरी अन्य गति ही कहाँ है ? तुम यदि दूर फेंक दोगे तो मैं अबला कहाँ जाऊँगी ? मेरे प्रियतम ! एक निमेषके लिये भी जब तुम्हें नहीं देख पाती तो मेरे प्राण निकलने लगते हैं। मेरे स्पर्शमणि ! तुम्हें ही तो मैं अपने अंगोंका भूषण बनाकर गलेमें धारण करती हूँ।'

× × × ×

जिस क्षण किशोरीने व्रजरानीका आदेश सुना, यह जाना कि श्रीकृष्णचन्द्र रुग्ण हैं कि बस, उसी क्षण विक्षिप्त–सी हुई दौड़ीं। गोशालामें आ पहुँचीं। उनके आते ही सम्पूर्ण गोशाला उद्भासित हो उठी। तरुण वैद्य आसनसे उठे, भानुकिशोरीके आगे सिर टेक दिया।

× × × ×

भानुनन्दिनी जल भरने चलीं। तमाल तरुसे सन्नद्ध प्रियतमके केशोंसे निर्मित उस सेतुको उन्होंने प्रणाम किया। फिर उसपर अपने कोमल चरण रखकर चल पड़ीं। मध्य धारामें जाकर एकबार किशोरीने पीछेकी ओर फिरकर देखा। 'सतीकी जय हो, भानुकिशोरीकी जय हो'——तुमुल नादसे यमुना–कूल निनादित हो रहा था, तरुश्रेणी आनन्दविवश होकर नाच रही थी, कलिन्दनन्दिनी भी उमंगमें भरकर ऊँची–ऊँची लहरें ले रही थीं, मानो कूलको तोड़कर वृन्दावनको प्लावित कर देंगी। भानुकिशोरीने यह आनन्द कोलाहल सुनकर,

आनन्द–प्रकम्पन देखकर ही आश्चर्यसे पीछेकी ओर देखा था।

क्रमशः तीन बार किशोरी इस सेतुपर इस पारसे उस पार तक हो आयीं। फिर सहस्र छिद्रोंवाली कलसीको जलसे पूर्ण करने चलीं। बायें हाथसे ही कलसीको डुबाया, कलसी ऊपरतक भर गयी; उसे सिरपर रखकर गोशालाकी ओर चल पड़ीं। आकाशसे तो पुष्पोंकी वर्षा हो ही रही थी; गोपोंने गोपसुन्दरियोंने, उसी क्षण तोड़–तोड़कर भानुकिशोरीके चरणोंमें इतने पुष्प चढ़ाये कि वह सम्पूर्ण पथ कुसुममय हो गया।

भानुकिशोरीने कलसी तरुण वैद्यके सामने रख दी। वैद्यराजके नेत्र सजल हो रहे थे। वे बोले—'देवि ! तुम्हीं अपने पवित्र हस्तकमलोंसे एक अञ्जलि जल नन्दनन्दनपर डाल दो।' आज्ञा मानकर लज्जासे अवनत हुई किशोरीने अञ्जलिमें जल लिया और श्रीकृष्णचन्द्रपर बिखेर दिया। श्रीकृष्णचन्द्र



ऐसे उठ बैठे, मानो सोकर जगे हों।

सिर नीचा किये भानुकिशोरी अपने घरकी ओर जा रही हैं तथा उनके पीछे, अभी–अभी कुछ देर पहले जो गोपियाँ उनके चरित्रपर धूल उछाला करतीं, वे अपने अञ्चलमें उनकी चरण–रज बटोरती जा रही हैं। बड़े–बड़े वृद्ध गोप सती–शिरोमणि श्रीराधाकिशोरीके चरणोंसे रञ्जित उस पथमें लोट–लोटकर कृतार्थ हो रहे हैं।

रासमें मिलन

भानुकिशोरी अपने श्रीअंगोंको सजा रही थीं, मेरे प्रियतमको मेरा शृंगार परमानन्दसिन्धुमें निमग्न कर देता है——केवलमात्र इस भावनासे, एकमात्र प्राणेश्वरको सुख पहुँचानेके उद्देश्यसे। इसी समय शारदीय शशधरकी ज्योत्स्नासे उद्भासित यमुनापुलिनपर श्रीकृष्णचन्द्रकी वंशी बज उठती है। बस, फिर तो मिलनोत्कण्ठासे विक्षिप्त हुई भानुकिशोरीका शृंगार धरा ही रह जाता है; नहीं–नहीं, एक विचित्र साजसे सजकर किशोरी पुलिनकी ओर दौड़ चलती है।

किशोरीने गोस्तननामक मणिमय हारको कण्ठमें न धारणकर नितम्बदेशमें धारण किया, कटिकिंकणीको कण्ठमें डाल लिया, पुष्पमालाओंको सिरमें लपेट लिया, ललाटिका (सींथी) वेणीमें लटका ली, नेत्रोंमें तो मृगमद (कस्तूरी)का अञ्जन लगा लिया एवं अञ्जनसे ललाटपर बेंदी लगा ली, अंगरागके बदले यावक (आलता) रस उठा लिया, उससे श्रीअंगोंको पोत लिया। यही दशा आज किशोरीकी सखियोंकी भी हुई। उन्हें आभूषण धारण करनेको तो अब अवकाश कहाँ ? हाँ, वे वस्त्र बदल रही थीं, वस्त्रमात्र बदल सकीं; पर ओढ़नीको तो साड़ी बना लिया, एवं लहँगेको ओढ़ लिया। इस विचित्र वेष–भूषासे सज्जित हुई भानुकिशोरी एवं किशोरीकी सखियाँ वंशीधरके समीप जा पहुँचीं——

'व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णान्तिकं ययुः'

(श्रीमद्भागवत)

प्रेमविभोर भानुकिशोरीका यह शृंगार देखकर अखिलरसामृतमूर्ति श्रीकृष्णचन्द्रके हृदयमें रसकी एक अभिनव धारा बह चलती है। बिन्दुके रूपमें वह रस उनके नेत्रोंसे झरने लगता है। रसमय नेत्रोंसे ही वे भानुकिशोरीके इस शृंगारकी ओर कुछ देर देखते रहते हैं। इतनेमें ही इसी वेष–भूषाके अन्तरालसे महाभावरूपा भानुकिशोरीका वह सौन्दर्य, वह शृंगार निखर पड़ता है, जिसे स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अनादिकालसे देख रहे हैं, अनन्त कालतक देखते रहेंगे; जिसे देख–देखकर वे अबतक तृप्त नहीं हुए, अनन्त कालतक तृप्त होंगे भी नहीं। भानुकिशोरीका वह शृंगार यह है——वे श्रीकृष्ण–स्नेहका तो उबटन लगाती हैं, उस उबटनमें सखियोंका प्रणयरूप सुगन्धित द्रव्य भी मिश्रित रहता है; उससे किशोरीके अंग स्निग्ध, कोमल, सुगन्धपूर्ण, उज्ज्वल हो जाते हैं।

पहले किशोरी कारुण्यरूप अमृतधारामें स्नान करती हैं, यह किशोरीका मानो प्रातःस्नान (कौमार) है; फिर तारुण्यकी अमृतधारामें स्नान करती हैं, यह किशोरीका मध्याह्न–स्नान (कैशोर) है। दो स्नान करके फिर लावण्यकी अमृतधारामें अवगाहन करती हैं; यह किशोरीका सायाह्न–स्नान, तृतीय स्नान (कैशोर–सौन्दर्य) है। स्नानके पश्चात् अपनी लज्जारूप साड़ी पहन लेती हैं; यह साड़ी श्यामवर्ण होती है, दिव्य शृंगार–रसमय तन्तुओंसे निर्मित रहती है। भानुकिशोरी कृष्णअनुरागकी अरुण साड़ी भी धारण करती हैं तथा प्रणय एवं मानकी कञ्चुलिकासे वक्षःस्थल आच्छादित रहता है। फिर अंग–विलेपन करती हैं, उस विलेपनमें सौन्दर्यरूप कुंकुम पड़ा रहता है। सखी–प्रणयरूप चन्दन मिला होता है। अधरोंकी स्मितकान्तिरूप कर्पूरचूर्ण मिश्रित रहता है। मधुर–रसका मृगमद (कस्तूरी) लेकर श्रीअंगोंको सुचित्रित करती हैं। प्रच्छन्न वंकिम मानके द्वारा केशबन्धकी रचना करती हैं, किसी दिव्य धीराधीरा सुन्दरीके दिव्य गुणोंको लेकर उससे उनका पटवास (सुगन्धित–चूर्ण) निर्मित होता है तथा उस दिव्य चूर्णको अपने अंगोंपर वे बिखेर लेती हैं। रागका ताम्बूल ग्रहण करती हैं, इस ताम्बूलरागसे उनके अधर उज्ज्वल अरुणवर्ण हो जाते हैं; प्रेमके कौटिल्यरूप अञ्जनसे दोनों नेत्रोंको आँजती हैं। सुदीप्त अष्ट सात्त्विक भाव, हर्ष आदि तैंतीस सञ्चारी भाव—इन भाव–भूषणोंको ही किशोरी अपने अंगोंमें धारण करती हैं। किलकिञ्चित आदि बीस भाव ही भानुकिशोरीके श्रीअंगोंके अलंकार हैं, माधुर्य आदि दिव्य पचीस सद्गुणोंकी पुष्पमालासे समस्त अंग पूर्ण रहते हैं; सुन्दर ललाटपर सौभाग्यरूप सुन्दर मनोहर तिलक सुशोभित रहता है, प्रेमवैचित्त्यरूप रत्नहार हृदयपर नाचता रहता है। नित्यकिशोरवयसरूप सखीके कंधेपर हाथ रक्खे वे अवस्थित रहती हैं तथा कृष्णलीलामयी मनोवृत्तिरूप सखियाँ उन्हें घेरे रहती हैं। अपने श्रीअंगके सौरभरूप गृहमें वे दिव्य गर्व–पर्यंकपर विराजित रहकर सदा श्रीकृष्ण–मिलनका चिन्तन करती रहती हैं। कृष्णनाम, कृष्ण–गुण, कृष्ण–यशका श्रवण ही कानोंमें अवतंसरूप (कर्ण–भूषण) हैं; श्रीकृष्ण–नाम, गुण–यशके प्रवाहसे वाणी अलङ्कृत है। श्यामरस–दिव्य शृंगार–रसरूप मधुसे पूरित पात्र हाथमें लेकर वे श्रीकृष्णचन्द्रको मधुपान कराती हैं। यही भानुकिशोरीके हाथोंकी शोभा है; समस्त अंगोंसे एकमात्र श्रीकृष्णकी सेवा होती है—यही किशोरीकी अंगशोभा है। विशुद्ध श्रीकृष्णप्रेमरत्नकी

आकरभूता राधाकिशोरीके अंगोंके अन्तरालसे अनन्त सद्गुण चमकते रहते हैं; उनसे नित्य विभूषित राधाकिशोरीको बाह्य शृंगारकी आवश्यकता नहीं।*

*राधाप्रति कृष्णस्नेह सुगन्धि उद्वर्त्तन।
ताते अति सुगन्धि देह उज्ज्वलवरण।।
कारुण्यामृतधाराय स्नान प्रथम।
तारुण्यामृतधाराय स्नान मध्यम।।
लावण्यमृतधाराय तदुपरि स्नान।
निजलज्जा–श्याम–पट्टशाटी परिधान।।
कृष्ण अनुरागे रक्त द्वितीय वसन।
प्रणय–मान–कञ्चुलिकाय वक्ष आच्छादन।।
सौन्दर्य कुंकुम सखी–प्रणय चन्दन।
स्मित–कान्ति कर्पूर तिने अंगविलेपन।।
कृष्णेर उज्ज्वल रस मृगमदभर।
सेइ मृगमदे विचित्रित कलेवर।।
प्रच्छन्न–मान वाम्य धम्मिल्ल–विन्यास।
धीराधीरात्मक गुण अंगे पटवास।।
राग–ताम्बूल–रागे अधर उज्ज्वल।
प्रेमकौटिल्ये नेत्रयुगले कज्जल।।
सूद्दीप्त सात्त्विकभाव, हर्षादि संचारी।
एइ सब भाव भूषण सब अंगे भरि।।
किलकिञ्चितादि भाव विंशति भूषित।
गुणश्रेणी पुष्पमाला सर्वांगे पूरित।।
सौभाग्य तिलक चारु ललाटे उज्ज्वल।
प्रेमवैचित्त्य रत्न हृदये तरल।।
मध्यवयस्थिति–सखीस्कन्धे करन्यास।
कृष्णलीला–मनोवृत्ति सखी आश पाश।।
निजांग–सौरभालये गर्व–पर्यंक।
ताते बसि आछे सदा चिन्ते कृष्णसंग।।
कृष्ण–नाम–गुण–यश अवतंस काने।
कृष्ण–नाम–गुण–यश प्रवाह वचने।
कृष्णके कराय श्यामरस मधुपान।
निरन्तर पूर्ण करे कृष्णेर सर्वकाम।।
कृष्णेर विशुद्धप्रेम–रत्नेर आकर।
अनुपम गुण–गण पूर्ण कलेवर।।

अस्तु, भानुनन्दिनी एवं श्रीकृष्णचन्द्र राका–रजनीमें इस प्रकार मिले। इसी समय दल–की–दल असंख्य गोप–सुन्दरियाँ आ पहुँचती हैं; क्योंकि आज तो महारासके लिये वंशी बजी है, आज ही तो साधनसे गोपी बने हुए अनन्त भक्तोंको नित्यरास–नित्यलीलामें प्रविष्ट करानेका मुहूर्त है।

× × × ×

योगमाया मञ्चपर अपना वैभव बिखेरकर लीलाक्रमका निर्देश करती जा रही हैं तथा उसी क्रमसे लीला आगे बढ़ रही है। पहले गोप–सुन्दरियोंकी प्रेम–परीक्षा होती है; जब वे पूर्णतया उसमें उत्तीर्ण हो जाती हैं तो नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रका प्रेमसिन्धु उमड़ उठता है, व्रज–सुन्दरियाँ उसमें डूब–डूबकर कृतार्थ होने लगती हैं। इस रसपानसे––अवश्य ही रस–वर्द्धनके लिये—गोप–सुन्दरियोंमें तो सौभाग्य–मदका एवं भानुकिशोरीमें मानका आविर्भाव होता है। भानुकिशोरी मान करके निकुञ्जमें चली जाती हैं। उन्हें न देखकर श्रीकृष्णचन्द्र भी वहाँसे अन्तर्हित हो जाते हैं। अन्तर्धान होनेका उद्देश्य यह है कि व्रज–सुन्दरियोंका सौभाग्य–गर्व प्रशमित होकर इनके रसकी पुष्टि हो एवं प्रियाका मान–प्रसादन होकर महाभाव–सिन्धु लहर उठे और हम सभी उसमें निमग्न हो जायँ—

तासां तत् सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत॥

(श्रीमद्भा० १०। २९। ४८)

× × × ×

व्रजसुन्दरियाँ व्याकुल होकर प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रको वनमें ढूँढ़ने जाती हैं, उन्मादिनी–सी हुई तरु–लता–वल्लरियोंसे प्रियतमका पता पूछती हैं—

बिरहाकुल है गयीं, सबै पूछत बेली बन ।
को जड़, को चैतन्य, न कछु जानत बिरही जन ॥
हे मालति, हे जाति, जूथिके, सुनि हित दे चित ।
मान हरन मन हरन लाल गिरिधरन लखे इत ॥
हे केतकि, इत तें कितहूँ चितए पिय रूसे ।
कै नँदनंदन मंद मुसुकि तुमरे मन मूसे ॥
हे मुक्ताफल बेल, धरे मुक्ताफल माला ।
देखे नैन बिसाल मोहना नंद के लाला ॥
हे मंदार, उदार, बीर करबीर महामति ।

देखे कहुँ बलबीर धीर मन हरन धीर गति।।
हे चंदन, दुखदंदन सब की जरन जुड़ावहु।
नँदनंदन जगबंदन चंदन हमहिं बतावहु।।
पूछो री इन लतनि फूलि रहिं फूलनि जोई।
सुंदर पिय के परस बिना अस फूल न होई।।
हे सखि, हे मृगबधू, इन्हैं किन पूछहु अनुसरि।
डहडहे इन के नैन, अबहिं कहुँ देखे हैं हरि।।
अहो सुभग बन गंधि पवन सँग थिर जु रही चलि।
सुख के भवन दुख दवन रवन इतते चितए बलि।।
हे चंपक, हे कुसुम, तुम्हैं छबि सबसों न्यारी।
नैक बताय जु देउ, जहाँ हरि कुँजबिहारी।।
हे कदंब, हे निंब, अंब, क्यों रहे मौन गहि।
हे बट उतँग सुरंग बीर, कहु तुम इत उत लहि।।
हे अशोक, हरि सोक लोकमनि पियहि बतावहु।
अहो पनस, सुभ सरस मरत तिय अमिय पियावहु।।
जमुन निकट के बिटप पूछि भइ निपट उदासी।
क्यों कहिहैं सखि अति कठोर ये तीरथबासी।।

——तथा इधर राधाकिशोरी अपने प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रके प्राणोंमें प्राण मिलाकर आत्मविस्मृत हो गयी हैं। जब जागती हैं तो उस समय भी प्रेम वैचित्त्य* का भाव लेकर ही जागती हैं और इसीलिये कुछ-का-कुछ अनुभव करने लगती हैं। श्रीकृष्णचन्द्र भानुकिशोरीकी दृष्टिके सामने खड़े हैं; पर किशोरीको यह अनुभूति होने लगती है कि प्रियतम जैसे अन्य गोपियोंको छोड़कर चले आये थे, वैसे मुझे भी छोड़कर चले गये। यह अनुभूति इतनी गाढ़ हो जाती है कि किशोरी व्याकुल होकर चीत्कार कर उठती हैं——

हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज।
दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम्।।

(श्रीमद्भागवत १०। ३०। ४०)

* प्रियस्य संनिकर्षेऽपि प्रेमोत्कर्षस्वभावतः।
या विश्लेषधियाऽऽर्तिस्तत् प्रेमवैचित्त्यमुच्यते।।

(उज्ज्वलनीलमणि)

'प्रियतमके निकट रहनेपर भी प्रेमके उत्कर्षवश प्रियतमसे मेरा वियोग हो गया है——ऐसी भावना होकर जो पीड़ा होती है, उसे प्रेमवैचित्त्य कहते हैं।'

'हा नाथ! हा रमण! हा प्रियतम! हा महाबाहो! तुम कहाँ हो? मैं तो तुम्हारी दासी हूँ, अत्यन्त दीन हो रही हूँ। मुझे दर्शन दो।'

भानुनन्दिनीका यह प्रेमवैचित्त्य-विकार देखकर श्रीकृष्ण तो निर्वाक् हो गये। भानुकिशोरीके चरणोंमें लुट पड़नेके लिये झुके, किंतु इसी समय व्रज सुन्दरियाँ उन्हें ढूँढ़ती हुई वहाँ आ पहुँचीं। अतः वैचित्त्यवश विलाप करती हुई भानुकिशोरीको वहीं छोड़कर वे पुनः अन्तर्धान हो गये।

व्रजसुन्दरियाँ आयीं। भानुकिशोरीकी व्याकुलता देखकर अपना दुःख भूल गयीं, किशोरीके आँसू पोंछने लगीं।

× × × ×

भानुनन्दिनीके विलापसे, व्रजसुन्दरियोंके सुस्वर क्रन्दनसे वह सारी वन-स्थली करुणाप्लावित हो गयी। इसी समय कोटि-मन्मथमन्मथरूपमें श्रीकृष्णचन्द्र प्रकट हो गये। उनके दर्शनमात्रसे मानो व्रजसुन्दरियोंने तो नवजीवन पाया, पर भानुकिशोरीमें पुनः प्रणयकोपका सञ्चार हो गया। अवश्य ही इस बार श्रीकृष्णचन्द्रकी वाणीमें ऐसा मधु, इतनी नम्रता भरी थी कि भानुकिशोरीका मान क्षणभरमें देखते-देखते ही उस मधुधारामें बह गया। श्रीकृष्णचन्द्रने व्रजसुन्दरियोंसे तो यह कहा—

तब बोले ब्रजराज कुँवर, हौं रिनी तुम्हारो।
अपने मन तें दूरि करौ किन दोष हमारो॥
कोटि कल्प लगि तुम प्रति प्रतिउपकार करौं जौ।
हे मन हरनी तरुनी, उरिनी नाहि तबौं तौ॥

—तथा किशोरीको हृदयसे लगाकर बोले—

सकल विस्व अपबस करि मो माया सोहति है।
प्रेममयी तुमरी माया, सो मोहि मोहति है॥
तुम जु करी, सो कोउ न करै, सुनि, नवल किसोरी।
लोक बेद की सुदृढ़ सृंखला तृन सम तोरी॥

भानुकिशोरीने संकुचित होकर प्रियतमके पीताम्बरमें अपना मुख छिपा लिया।

× × × ×

महारास-रसकी धारा यमुनापुलिनपर बह चलती है। मानो भानुकिशोरी सौदामिनी है और श्रीकृष्णचन्द्र नवजलधर; श्यामघटामें विलीन तड़ित्-लहरी-सी

भानुकिशोरी नृत्य कर रही हैं एवं श्यामवारिधर श्रीकृष्णचन्द्र उमड़–घुमड़कर रसकी वर्षा कर रहे हैं। उन्हें घेरकर एक व्रजसुन्दरी एक श्रीकृष्णचन्द्र, फिर एक गोपसुन्दरी एक श्रीकृष्ण——इस क्रमसे मण्डलकी रचना है, मानो दो स्वर्णिम मणियोंके मध्यमें एक–एक इन्द्रनीलमणि हो।

देवदुन्दुभि बज रही है; देववृन्द आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा कर रहे हैं। रासके तालपर नृत्य करती हुई वन–अधिदेवी वृन्दा गा रही हैं। उन्हींके स्वरमें स्वर मिलाकर गगनस्थ देवांगनाएँ भी गा रही हैं——

आज गुपाल रास रस खेलत,
पुलिन कल्पतरु तीर री, सजनी।
सरद बिमल नभ चंद विराजत,
रोचक त्रिबिध समीर री, सजनी॥
चंपक बकुल मालती मुकुलित,
मत्त मुदित पिक कीर री, सजनी।
देखि सुगंध राग रँग नीको,
ब्रज जुवतिन की भीर री, सजनी॥
मघवा मुदित निसान बजायौ,
ब्रत छाँड्यौ मुनि धीर री, सजनी।
(जै श्री) हित हरिवंस मगन मन स्यामा,
हरत मदन धन पीर री, सजनी॥

यह एक झाँकी है महारासके समय भानुकिशोरी श्रीराधा एवं नन्दकिशोर श्रीकृष्णचन्द्रके मिलनकी।

वियोग

यदि अक्रूर श्रीकृष्णचन्द्रको मधुपुरी ले ही जायगा तो फिर किसके लिये वृन्दावनमें नवकुञ्जोंका निर्माण करूँ ? किसलिये मनोहर पुष्पशय्याकी रचना करूँ ? सौरभशालिनी लता–वल्लरियोंको पुष्पित करनेसे ही क्या प्रयोजन है ? उनपर कुसुमविकास करानेका समय तो समाप्त हो चला, वृन्दावनके दुर्दिन आरम्भ हो गये, अब इसे सजाकर ही क्या करूँगी ?

वनभुवि नवकुञ्जं कस्य हेतोर्विधास्ये
कृतरुचि रचयिष्याम्यत्र वा पुष्पतल्पम्।
सुरभिसमये वा वल्लिमुत्फुल्लयिष्ये
यदि नयति मुकुन्दं गान्दिनेयः पुराय॥

(ललितमाधव)

——यह कहती हुई कानन–अधिदेवी वृन्दा रोने लगीं। किंतु भानु–किशोरीको अभीतक यह समाचार नहीं मिला है कि मधुपुरसे कंसदूत अक्रूर प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रको लेने आये हैं। आनन्दसिन्धुमें निमग्न भानुनन्दिनीको यह भान नहीं कि सौ वर्षके लिये प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रसे वियोग होनेका वह निर्धारित समय उपस्थित हो गया है। तीन वर्ष, पाँच महीने हो गये——किशोरी बाह्य जगत्‌को भूल–सी गयी हैं। प्रभात आता, दिन हँसता, संध्या आँचल फैलाती, निशा साँस लेती, उषा अरुणराग बिखेरती और फिर प्रभात हो जाता; किंतु किशोरी नहीं जानतीं, कब क्या हुआ। कभी प्रियतमसे साक्षात् मिलनका, तो कभी श्रीकृष्णस्फूर्तिका आनन्दसागर लहराता रहता एवं किशोरी उसकी लहरोंपर न जाने कहाँ–से–कहाँ बहती रहतीं। आज संध्या हो चुकी है, पर भानुकिशोरीके नेत्रोंमें तो अभी दिन है। सुदूर उपवनके किसी कदम्ब–कुञ्जमें प्रियतमके मुखारविन्दसे झरते हुए मधुको पी–पीकर मन–ही–मन वे मतवाली हो रही हैं। ललिता–विशाखा सामने खड़ी हैं, दुःख–भारसे दोनोंका हृदय फटता जा रहा है। वे सोच नहीं पातीं कि यह हृदयविदारक समाचार—— श्रीकृष्णचन्द्र कल मधुपुरी चले जायँगे, यह प्राणहारी सूचना किशोरीके सामने कैसे प्रकट करें; न कहनेका साहस हो रहा है न छिपानेका। धैर्य छूटता जा रहा है, दुःखसे सर्वथा जड़वत होती जा रही हैं तथा विकल होकर परस्पर कानोंमें धीरे–धीरे इसकी चर्चा कर रही हैं——

न वक्तुं नावक्तुं पुरगमनवार्तां मुरभिदः
क्षमन्ते राधायै कथमपि विशाखाप्रभृतयः।
समन्तादाक्रान्ता निबिडजडिमश्रेणिभिरिमाः
परं कर्णाकर्णि व्यवहृतिमधीरं विदधति॥

(ललितमाधव)

× × × ×

आखिर भानुदुलारीको यह वज्रभेदी समाचार सुननेको मिला ही, सुनते ही वे मूर्छित होकर गिर पड़ीं। किंतु मूर्च्छा भी भानुकिशोरीके जलते हुए हृदयके तापको सह नहीं सकी, प्राण बचानेके लिये भाग खड़ी हुई। किशोरी जाग उठीं, हाहाकार करने लगीं। श्रीकृष्णचन्द्र आये, सारी रात प्रबोध देते रहे; किंतु किशोरीके करुणक्रन्दनका विराम नहीं हुआ। वे पुनः संज्ञाशून्य हो गयीं।

× × × ×

शिशिर–वसन्तकी सन्धिपर आयी हुई यह रजनी भी मानो भानुकिशोरीकी

व्यथाके व्याकुल होकर क्षितिजकी ओटमें जा छिपी और उसके स्थानपर कालका नियन्त्रण करने प्रभात आया। किशोरीको जब चेतना हुई तो प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र समीपमें नहीं थे। नन्दप्रासादमें अत्यन्त कोलाहल हो रहा था, किशोरी उसी ओर दौड़ चलीं। जाकर देखा——अक्रूरके रथपर प्राणधन विराजित हैं, विनोदकी बात नहीं थी; सचमुच ही वे कंसकी रंगशाला देखने मधुपुरी जा रहे हैं। फिर तो किशोरीमें दिव्योन्माद आरम्भ हुआ। वे एक बार हँसीं, फिर गम्भीर होकर बोलीं——'री ललिते! विशाखे! देख तो बहिन! श्रीकृष्णचन्द्र तो रथपर बैठे हैं। बैठे हैं न? तू देख पा रही है न? अच्छा, यह तो देख——उन्हें रथपर बैठे देखकर मेरा शरीर स्खलित क्यों हो रहा है? अरे देख, वह देख! पृथ्वी घूम रही है; भला, पृथ्वी क्यों घूम रही है, बहिन! यह लो! वह कदम्बश्रेणी तो नाच रही है! ये कदम्ब क्यों नृत्य कर रहे हैं?—

स्खलति मम वपुः कथं धरित्री।
भ्रमति कुतः किममी नटन्ति नीपाः॥

(ललितमाधव)

रोती हुई ललिता कुछ दूसरी बात कहकर किशोरीका ध्यान बदलना चाहती हैं, किंतु भानुनन्दिनी रोषमें भरकर बीचमें ही बोल उठती हैं—

विरम कृपणे भावी नायं हरेर्विरहक्लमो।
मम किमभवन् कण्ठे प्राणा मुहुर्निरपत्रपाः॥

(ललितमाधव)

'कृपणे! चुप रह! मुझे भुलाने आयी है? क्या तू समझती है प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रसे मेरा वियोग होगा? मुझे वियोग–दुःख भोगना पड़ेगा? बावली हुई है! क्या कण्ठमें बार–बार आनेवाले मेरे प्राण इतने निर्लज्ज हैं कि वे फिर शरीरमें रह जायँगे, पीछे नहीं चले जायँगे?'

विशाखा किशोरीको पकड़ लेती हैं। इतनेमें ही अक्रूर रथ हाँकने लगते हैं। भानुकिशोरी विशाखाको ठेलकर दौड़ पड़ती है, किंतु दो पग चलकर ही कटी चम्पकलताकी भाँति विशाखाके हाथोंपर गिर पड़ती हैं।

× × × ×

रथ आगे बढ़ नहीं पाता। व्रजसुन्दरियोंकी भीड़ गति रोके खड़ी है। इतनेमें किशोरी पुनः चैतन्य होकर, विशाखासे हाथ छुड़ाकर रथके समीप चली आती हैं। हाय! इस समय किशोरीकी कैसी करुण दशा है—

क्षणं विक्रोशन्ती लुठति हि शतांगस्य पुरतः
क्षणं वाष्पग्रस्तां किरति किल दृष्टिं हरिमुखे।

क्षणं रामस्याग्रे पतति दशनोत्तम्भिततृणा
न राधेयं कं वा क्षिपति करुणाम्भोधिकुहरे।।

(ललितमाधव)

'कभी तो वे चीत्कार करती हुई रथके आगे जाकर लोटने लगती हैं, कभी अश्रुपूरित नेत्रोंसे श्रीकृष्णचन्द्रके मुखकी ओर देखने लगती हैं; कभी दाँतोंके नीचे एक तृण लेकर बलरामके समक्ष गिर पड़ती हैं, तृणके संकेतसे करुण प्रार्थना करती हैं—मेरे प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रको तुम रोक लो, दाऊ भैया! ओह! कौन ऐसा है, जो भानुकिशोरीकी यह व्याकुलता देखकर द्रवित न हो जाय—करुणा-समुद्रमें डूब न जाय!'

जो भानुकिशोरी अपनी प्राणरूप सखियोंके सामने भी श्रीकृष्णचन्द्रकी ओर देखनेमें सकुचाती थीं, वे आज गुरुजनोंके सामने निर्लज्ज हुई विस्फारित नेत्रोंसे श्रीकृष्णचन्द्रकी ओर देख रही हैं! भानुनन्दिनीकी यह विकलता देखकर उन गुरुजनोंके नेत्रोंसे भी आँसू बह चलते हैं। और तो क्या, निठुर बनकर मधुपुर जाते हुए श्रीकृष्णचन्द्र भी आत्मसंवरण नहीं कर सके। उनके नेत्रोंसे भी अश्रुप्रवाह आरम्भ हो गया—

रथिनः पथि पश्यतः सखेदं
बत राधावदनं मुरान्तकस्य।
किरतो नयने घनाश्रुबिन्दू-
नरविन्दे मकरन्दवत् क्रमेण।।

'रथपर आसीन श्रीकृष्णचन्द्र राधाकिशोरीकी ओर देख रहे हैं, उनके दोनों नेत्रोंसे घन-घन अश्रुबिन्दु झर रहे हैं, मानो दो कमल पुष्पोंसे क्रमशः मकरन्द झर रहा हो!'

किंतु यह सब होनेपर भी धीरे-धीरे रथ आगेकी ओर बढ़ने ही लगा, श्रीकृष्णचन्द्रको लेकर अक्रूर चले ही गये। गोकुलका अणु-अणु हाहाकार कर उठा। मानो अक्रूररूप मन्दरने गोकुलसागरका मन्थनकर उसे विक्षुब्ध कर दिया; उसमें जो विरहवेदनामय हलाहल कालकूट निकला, वह तो वहीं बिखर गया तथा कृष्णरूप चन्द्र अक्रूरके साथ चले गये—इस प्रकार व्रजपुर श्रीकृष्णविरहमें जल उठा, व्रजचन्द्रके अदर्शनसे उसमें अन्धकार छा गया।

× × × ×

हाय! नन्दकुल-चन्द्रमा कहाँ चले गये? कहाँ हैं? सखि! तू बता दे, मयूरपिच्छधारी कहाँ चले गये? मोहन-मन्त्रमयी मुरलीध्वनि करनेवाले कहाँ हैं? बहिन! जिनके अंगोंकी कान्ति इन्द्रनीलमणि-सी है, वे मेरे हृदयेश्वर

कहाँ हैं ? ओह ! रासरसकी तरंगोंपर जो नृत्य करते थे, वे कहाँ चले गये ? मेरे जीवनाधार कहाँ हैं ? हाय रे हाय ! मेरी परम प्यारी निधि कहाँ चली गयी ? मेरे प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र कहाँ चले गये ? आह ! विधाता !! तुम्हें धिक्कार है—

क्व नन्दकुलचन्द्रमाः क्व सखि चन्द्रकालंकृतिः
क्व मन्त्रमुरलीरवः क्व नु सुरेन्द्रनीलद्युतिः।
क्व रासरसताण्डवी क्व सखि जीवरक्षौषधि
र्निधिर्मम सुहृत्तमः क्व बत हन्त हा धिग्विधिम्।।

(ललितमाधव)

—इस प्रकार पुकारती–पुकारती भानुकिशोरी तो उन्मादिनी हो गयीं। समस्त दिन, सारी रात—कभी तो प्रलाप करती रहतीं; कभी जड़–चेतन, स्थावर–जंगम, जो भी दृष्टिपथमें आता, उससे श्रीकृष्णचन्द्रका समाचार पूछने लगतीं। कभी यमुनातटपर चली जातीं; कल–कल करती हुई धाराकी ओर कान लगाकर कुछ देर सुनती रहतीं और फिर कह उठतीं—

मृदु–कलेवरे तुमि, ओ हे शैवालिनि,
कि कहिछ भाल क रे कह ना आमारे—
सागर–विरहे यदि प्राण तव काँदे, नदि,
तोमार मनेर कथा कह राधिकारे—
तुमि कि जान ना, धनि, से ओ विरहिणी ?

मृदुकलेवरे यमुने ! क्या कह रही हो, मुझे अच्छी प्रकार समझाकर कहो। सागरके विरहमें यदि तुम्हारे प्राण रो रहे हैं, तो अपने मनकी बात, मनकी व्यथा राधिकाको बताओ। सुन्दरि ! क्या तुम नहीं जानती कि राधा भी विरहिणी है ?

कभी मयूरीकी ओर भानुकिशोरीकी दृष्टि जाती तो उससे बातें करने लगतीं—

तरुशाखा ऊपरे शिखिनि !
केन लो वसिया तुइ विरस वदने ?
ना हेरिया श्याम चाँदे, तोरो कि पराण काँदे,
तुइ ओ कि दुःखिनी !
आहा ! के ना भालवासे राधिकारमणे ?
कार न जुड़ाय आँखि शशी, विहंगिनि ?
आय, पाखि, आमरा दुजने

गला धराधरि करि भावि लो नीरदे;
नवीन नीरदे प्राण तुइ करेछिस् दान—
से कि तोर हबे ?
आर कि पाइबे राधा राधिकारञ्जने ?
तुइ भाव घने, धनि, आमि श्रीमाधवे।

'री शिखिनी ! तू तरुशाखापर उदास क्यों बैठी है; क्या श्रीकृष्णचन्द्रको न देखकर तेरे प्राण भी रो रहे हैं ? क्या तू भी उनके वियोग–दुःखसे दुखिनी हो रही है ? आह ! सच्ची बात है, राधिकारमणको कौन नहीं प्यार करता ? विहंगिनी ! भला, चन्द्र किसके नेत्रोंको शीतल नहीं करता ? पक्षी ! तू आ, मेरे समीप आ जा; एकान्तमें हम दोनों परस्पर एक दूसरेके कण्ठसे लगकर विचार करें। नवीन नीरदको तुमने अपने प्राण सौंपे तो क्या वह तुम्हारा हो जायगा ? क्या पुनः राधाको राधारञ्जन मिल जायँगे ? मयूरी ! आ, तू तो मेघका चिन्तन कर और मैं श्यामजलधरवर्ण माधवका।'

कभी अपने ही हाहाकारकी प्रतिध्वनि सुनकर भानुनन्दिनी चकित हो जातीं और प्रतिध्वनिसे पूछने लगतीं—

के तुमि श्यामेरे डाक, राधा यथा डाके—
हाहाकार–रवे ?
के तुमि, कोन युवती, डाक ए विरले, सति,
अनाथा राधिका यथा डाके गो माधवे ?
अभय–हृदये तुमि कह आसि मोरे—
के ना बाँधाए जगते श्याम–प्रेम डोरे ?
× × ×
बुझिलाम एतक्षणे के तुमि डाकिछ—
आकाशनन्दिनी !
पर्वत–गहन–वने वास तव, वरानने,
सदा रंगरसे तुमि रत, हे रंगिणि !
निराकारा भारति, के ना जाने तोमारे ?
एसेछ कि काँदिते गो लइया राधारे ?
जानि आमि, हे स्वजनि, भालवास तुमि
मोर श्यामधने।
शुनि मुरारिर बाँशी गाइते गो तुमि आसि,

शिखिया श्यामेर गीत मञ्जु कुञ्ज—वने।
राधा राधा बलि यबे डाकितेन हरि—
राधा राधा वलि तुमि डाकिते, सुन्दरि !

'तुम कौन हो ? जिस प्रकार राधा हाहाकार करती हुई श्यामको पुकारती हैं, वैसे ही उन्हें तुम भी पुकार रही हो ! सति ! बताओ, तुम कौन—सी युवती हो ? इस एकान्त स्थलमें अनाथा राधिकाकी भाँति ही माधवको बुला रही हो। निर्भयचित्त होकर मेरे पास आओ, मुझे बताओ। इसमें भयकी बात ही क्या है ? श्यामकी प्रेमडोरीसे इस जगत्‌में कौन बँधा हुआ नहीं है ? ओह ! आकाशनन्दिनी ! इतनी देर बाद मैं समझ पायी कि तुम कौन इस प्रकार पुकार रही थी। वरानने ! पर्वतमें, गहनवनमें तुम्हारा निवास है। रंगिणी ! तुम सदा खेल करनेमें लगी रहती हो। आकाररहित भारति ! तुम्हें कौन नहीं जानता ? पर क्या तुम राधाके लिये रोने आयी हो ? सजनी ! मैं जानती हूँ, तुम मेरे श्यामधनको प्यार करती हो। सुन्दर कुञ्जवनमें श्रीकृष्णचन्द्रकी मुरलीध्वनि सुनकर तुम उनके पास आती, उनसे उनका गीत सुन लेती एवं फिर वही गीत गाती। सुन्दरि ! जब श्रीहरि 'राधा—राधा' कहकर मुझे बुलाते थे, तो तुम भी 'राधा—राधा' कहकर मुझे बुलाने लगती थी।'

इसी प्रकार कभी भानुकिशोरी धरासे, कभी गिरिराजसे, कभी मलयमारुत, कुसुम, निकुञ्जवनसे बात करने लगतीं, उनसे श्रीकृष्णचन्द्रका पता पूछतीं, श्रीकृष्णचन्द्रके पास अपनेको ले चलनेके लिये प्रार्थना करतीं।

जब कभी भी चैतन्य होतीं तो श्रीकृष्णचन्द्रका स्फुरण होने लगता, उनकी अतीत लीलाओंकी स्मृतिसे किशोरीका मन भर जाता तथा अपना दुःखभार कम करनेके लिये वे सखियोंको अपने हृदयकी बात बताने लगतीं—

छिनहिं छिन सुरति होति सो माई।
बोलनि मिलनि चलनि हँसि चितवनि प्रीति रीति चतुराई।।
साँझ समय गोधन सँग आवनि परम मनोहरताई।
रूप सुधा आनंदसिन्धु महँ झलमलाति तरुनाई।।
अंग अंग प्रति मैन सैन सजि धीरज देत मिटाई।
उड़ि उड़ि लगत दृगनि टोना सौ जगमोहनी कन्हाई।।
मरियत सोचि सोचि बिन बातनि हौं बन गहन भुलाई।
'बल्लभ' औचक आइ मंद हँसि गहि भुज कंठ लगाई।।

× × × ×

माई वे सुख अब दुख देत।
हँसि मिलिबौ बोलिबौ स्याम कौ प्रान हरैं सौ लेत।
रूप सुधा भरि भरि इन नयननि छिन छिन पान कियो।
बिनु देखें ता बदन कमल के कैसें परत जियो।।
बचन रचन ज्यों मैन मंत्र से श्रवननि में रस बरसैं।
बिन मुक्ता सुक्ता ये त्यों ही गोल बोल कौं तरसैं।।
जे कल केस कुसुम लै निज कर गूँथे नंदकिसोर।
ते अब उरझि लटकि ढूँढ़त से कहाँ गए चित चोर।।
जिन ग्रीवनि ये भुजा मनोहर भूषन यों लिपटानी।
ते अनाथ सूनी बिनु माधव कासौं कहौं बखानी।।
वह चितवनि, वह चाल मनोहर, उठनि पीर उर बाँकी।
हाय कहाँ वह चरन परसिबौ, नख सिख सुन्दर झाँकी।।
एक समय सुनि गरज मेघ की हौं डरि थरथर काँपी।
दे पट ओट बिहँसि मनमोहन हिये लाय भुज चाँपी।।
अब यह बिरह दवानल प्रगट्यौ, जरे चहत सब ब्रजजन।।
'बल्लभ' बेगि आइ राखौ बलि कृपा नीर दै दरसन।।

किंतु वियोगिनी किशोरीका दुःखभार तो घटनेके बदले और बढ़ जाता। कितनी बार तो व्याकुलता यहाँ तक बढ़ जाती कि प्रतीत होता, मानो किशोरीके प्राण अब सचमुच नहीं रहेंगे। उस समय सखियाँ श्रीकृष्णचन्द्रकी दी हुई गुंजामाला उनके गलेमें डाल देतीं। बस, प्राण मानो इस गुंजामणियोंमें ही उलझ जाते, निकल नहीं पाते। इसके अतिरिक्त 'आयास्ये'—'प्रिये ! मैं आऊँगा,' श्रीकृष्णचन्द्रका यह सन्देश इतना सुदृढ़ बन्धन था कि प्राण इसे तोड़ नहीं पाते थे।

× × × ×

इधर श्रीकृष्णचन्द्रके प्राणोंमें भी कम पीड़ा नहीं है, कंसका निधन भी हो चुका है; पर वे तो व्रज जा नहीं सकते। इसीलिये वे अपने प्रिय सखा उद्धवको भानुनन्दिनीका, ब्रज–सुन्दरियोंका एवं नन्द–दम्पतिका समाचार लाने, उन्हें अपना सन्देश देकर सान्त्वना देने ब्रज भेजते हैं। उद्धव ब्रजमें आते हैं। पहले नन्द–दम्पतिसे मिलते हैं, उन्हें सान्त्वना देने जाते हैं, पर दे नहीं पाते। फिर ब्रज–सुन्दरियोंसे उनका मिलन होता है। इनके प्रेमकी धारामें तो उद्धवका सारा ज्ञान बह जाता है। अन्तमें उद्धव भानुनन्दिनीके समीप आये। भानुनन्दिनी

दूसरे राज्यमें थीं। वहाँसे उतरकर उद्धवसे मिलीं। पर उसी क्षण उनका मोहन महाभाव उद्वेलित हो उठा, उद्वेलित होकर दिव्योन्मादके रूपमें परिणत हो गया। उसी समय संयोगसे उड़ता हुआ एक भ्रमर भानुकिशोरीके दृष्टिपथमें आ जाता है। भानुकिशोरी ऐसा अनुभव करती हैं—मेरे प्रियतमने इस भ्रमरको दूत बनाकर भेजा है, मुझे यह मनाने आया है। बस, फिर तो किशोरीका वह दिव्योन्माद हिलोरें लेने लगता है; क्रमशः उसमें दस लहरें उठती हैं तथा भानुकिशोरीके श्रीमुखद्वारसे चित्रजल्पके रूपमें बाहरकी ओर प्रवाहित होने लगती हैं।

पहले प्रजल्पकी लहर आयी; श्रीराधाकिशोरी बोलीं—'रे कितवबन्धु मधुप! तू मेरे चरणोंका स्पर्श मत कर।' भौंरा भानुकिशोरीके चरणोंके समीप उड़ रहा था। भानुकिशोरीने अपने चरण हटा लिये।

दूसरी लहर आयी परिजल्पकी। किशोरीने कहा—'भ्रमर! तुम्हारे स्वामीने केवल एक बार अपनी मोहिनी अधर-सुधाका पान कराया और फिर निर्दय होकर यहाँसे चले गये, जैसे तुम पुष्पोंका रस लेकर उड़ जाते हो।'

अब विजल्पकी लहर नाचने लगी। किशोरी कह रही थीं—'रे मिलिन्द! यदुकुलशिरोमणिका गुणगान यहाँ क्यों कर रहा है; जा, उड़ जा, मधुपुरकी सुन्दरियोंके सामने किया कर; वे अभी उन्हें नहीं जानतीं।'

चौथी उज्जल्पकी लहर भानुदुलारीकी वाणीमें बह रही थी—'रे भृंग! तू मुझे क्यों भुलाने आया है कि श्रीकृष्ण मेरे लिये व्याकुल हैं? बावले! स्वर्गमें, पातालमें, पृथ्वीपर ऐसी कौन है, जो उनपर मोहित होकर न्योछावर न हो जाय; लक्ष्मी भी उनकी उपासना करती हैं। फिर मेरी जैसीको वे क्यों चाहेंगे?

अब संजल्पकी पाँचवीं तरंग बाहर आयी—'रे मधुकर! मेरे चरणोंको अपने सिरपर क्यों रख रहा है? हटा दे, ऐसा अनुनय-विनय मैं बहुत देख चुकी हूँ; जिनके लिये सब कुछ छोड़ा, वे छोड़कर चले जायँ! अब उनपर क्या विश्वास करें?'

छठी अवजल्पकी लहरी नृत्य कर उठी—'रे भौंरे! आजसे नहीं, मैं उन्हें बहुत पहलेसे जानती हूँ; उनकी निष्ठुरताका परिचय मुझे है। राम-रूपमें छिपकर बालिका वध किया; शूर्पणखाका रूप नष्ट कर दिया, दानवेन्द्र बलिसे छल किया, मुझे किसी भी काली वस्तुसे प्रयोजन नहीं .... पर उनकी चर्चा तो मैं नहीं छोड़ सकूँगी।'

अब सातवीं अभिजल्पकी तरंग आती है—'रे मधुप ! देख, जो एक बार भी उनके लीलापीयूषका एक कण पी लेता है, उसके सारे द्वन्द्व मिट जाते हैं; बहुतसे तो अपना घर-बार स्वाहा कर बाहर चले जाते हैं, भिक्षासे पेट भरते हैं, पर लीलाश्रवण नहीं छोड़ पाते।'

इसके पश्चात् आठवीं आजल्पकी लहरी आयी—'रे अलि ! हरिणी व्याधके सुमधुर गानपर विश्वास कर अपना प्राण खो देती है; हम सब भी उनकी मधुभरी बातोंमें भूल गयीं, आज उसीका परिणाम भोग रही हैं। उनकी बात जाने दे, कुछ दूसरी बात कह।'

अनन्तर प्रतिजल्पकी तरंग ऊपर उठी; भानुदुलारी बोलीं—'मधुकर ! मेरे प्रियतमके प्यारे सखा ! क्या मेरे प्रियतमने तुम्हें यहाँ भेजा है ? तब तो तुम मेरे पूज्य हो। तुम्हें कुछ चाहिये क्या ? जो चाहो, सो माँग लो; मैं वही दे दूँगी। प्यारे भ्रमर, क्या मुझे वहाँ ले चलोगे ?'

अब अन्तमें किशोरीके स्वरमें दीनता आ जाती है, उत्कण्ठाका भी समावेश हो जाता है तथा दसवीं सुजल्पकी लहरी होठोंसे बह चलती है; किशोरी कहने लगती हैं—'प्यारे भ्रमर ! आर्यपुत्र श्रीकृष्णचन्द्र मधुपुरीमें सुखसे तो हैं न ? क्या वे हम दासियोंकी कभी चर्चा भी करते हैं ? ओह ! वह दिन कब आयेगा, जब श्रीकृष्णचन्द्र दिव्यसुगन्धपूर्ण अपना हस्तकमल हमारे सिरपर रक्खेंगे !'*

यों कहकर श्रीराधाकिशोरी मौन हो गयीं। महाभावके इस महावैभवको

---

* प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रके किसी सुहृद्से मिलन होकर गूढ़ रोषके कारण अनेक भावोंसे युक्त जो वचन बोलना है, उसे चित्रजल्प कहते हैं। प्रजल्प आदि इसी चित्रजल्पके भेद हैं। इन दसोंके क्रमशः ये उदाहरण श्रीमद्भागवतमें मिलते हैं—

मधुप कितवबन्धो मा स्पृशाङ्घ्रिं सपत्न्याः
कुचविलुलितमालाकुङ्कुमश्मश्रुभिर्नः ।
वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं
यदुसदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक् ।।
सकृदधरसुधां स्वां मोहिनीं पाययित्वा
सुमनस इव सद्यस्तत्यजेऽस्मान् भवादृक् ।
परिचरति कथं तत्पादपद्मं तु पद्मा
ह्यपि बत हृतचेता उत्तमश्लोकजल्पैः ।।
किमिह बहु षडङ्घ्रे गायसि त्वं यदूना—

देखकर उद्धव कुछ देर तो आनन्दजड हुए निश्चल खड़े रहे तथा जब शरीरमें शक्ति आयी तो भानुकिशोरीके चरणोंमें लोट गये। भानुकिशोरीकी छाया पड़कर उद्धवका अणु–अणु रससे पूर्ण हो गया।

× × × ×

मधिपतिमगृहाणामग्रतो नः पुराणम्।
विजयसखसखीनां गीयतां तत्प्रसंगः
क्षपितकुचरुजस्ते कल्पयन्तीष्टमिष्टाः।।
दिवि भुवि च रसायां काः स्त्रियस्तद्दुरापाः
कपटरुचिरहासभ्रूविजृम्भस्य याः स्युः।
चरणरज उपास्ते यस्य भूतिर्वयं का
अपि च कृपणपक्षे ह्युत्तमश्लोकशब्दः।।
विसृज शिरसि पादं वेद्म्यहं चाटुकारै–
रनुनयविदुषस्तेऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात्।
स्वकृत इह विसृष्टापत्यपत्यन्यलोका
व्यसृजदकृतचेताः किं नु संधेयमस्मिन्।।
मृगयुरिव कपीन्द्रं विव्यधे लुब्धधर्मा
स्त्रियमकृत विरूपां स्त्रीजितः कामयानाम्।
बलिमपि बलिमत्त्वावेष्टयद् ध्वाङ्क्षवद् य–
स्तदलमसितसख्यैर्दुस्त्यजस्तत्कथार्थः।।
यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट्
सकृददनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः।
सपदि गृहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना
बहव इह विहंगा भिक्षुचर्यां चरन्ति।।
वयमृतमिव जिह्मव्याहृतं श्रद्दधानाः
कुलिकरुतमिवाज्ञाः कृष्णवध्वो हरिण्यः।
ददृशुरसकृदेतत्तन्नखस्पर्शतीव्र
स्मररुज उपमन्त्रिन् भण्यतामन्यवार्ता।।
प्रियसख पुनरागाः प्रेयसा प्रेषितः किं
वरय किमनुरुन्धे माननीयोऽसि मेऽङ्ग।
नयसि कथमिहास्मान् दुस्त्यजद्वन्द्वपार्श्वं
सततमुरसि सौम्य श्रीर्वधूः साकमास्ते।।
अपि बत मधुपुर्यामार्यपुत्रोऽधुनाऽऽस्ते
स्मरति स पितृगेहान् सौम्य बन्धूंश्च गोपान्।
क्वचिदपि स कथा नः किंकरीणां गृणीते
भुजमगुरुसुगन्धं मूर्ध्न्यधास्यत् कदा नु।।

(१० । ४७ । १२–२१)

कई मास पश्चात् जब उद्धव मधुपुर लौटने लगे तो भानुकिशोरीसे उन्होंने प्रियतम श्रीकृष्णके लिये संदेश माँगा। भानुकिशोरी बोलीं—

स्यान्नः सौख्यं यदपि बलवद्गोष्ठमाप्ते मुकुन्दे
यद्यल्पापि क्षतिरुदयते तस्य मागात्कदापि।
अप्राप्तेऽस्मिन्यदपि नगरादार्तिरुग्रा भवेन्नः
सौख्यं तस्य स्फुरति हृदि चेत्तत्र वासं करोतु।।

(उज्ज्वलनीलमणि)

'प्रियतम श्यामसुन्दरके यहाँ आनेसे हम सबोंको अपार सुख होगा; किंतु यदि यहाँ आनेमें उनकी किञ्चित् भी क्षति होती हो, तो वे कभी भी यहाँ न आवें। उनके नहीं आनेसे यद्यपि हम सबोंके भीषण दुःखकी सीमा नहीं, किंतु वहाँ रहनेसे यदि उनके हृदयमें सुख होता है, तो वे वहीं निवास करें।'

राधाकिशोरी ! तुम्हारे इस दिव्य प्रेमकी जय हो ! ---कहकर उद्धव श्रीकृष्णचन्द्रके पास चल पड़े।

कुरुक्षेत्रमें मिलन

श्रीकृष्णचन्द्र मथुरासे द्वारका चले गये। दिन, पक्ष, मास, वर्षके क्रमसे वह शतवर्ष वियोगकी अवधि भी क्षीण होती हुई पूरी हो गयी। अवश्य ही भानुकिशोरीके लिये तो शतवर्षका एक-एक क्षण कल्पके समान बीतता था। श्रीकृष्णचन्द्र भी स्थिर रहे हों, यह बात नहीं। केवल रुक्मिणी, सत्यभामा आदि पट्टमहिषियाँ ही जानती थीं---वृषभानुनन्दिनीको उनके प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र एक क्षणके लिये भी नहीं भूल सके। यहाँ भानुकिशोरीमें मोहन भाव उदय होता, वहाँ रुक्मिणीके पर्यंकपर श्रीकृष्णचन्द्र मूर्छित हो जाते। द्वारकामें श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलाकी यह दैनन्दिनी घटना थी।

समय हो चुका था। इसीलिये उनके अनुरूप तैयारी होने लगी। श्रीकृष्णचन्द्रने यदुकुलकी सभामें कुरुक्षेत्र जाकर सूर्योपरागका स्नान करनेका प्रस्ताव रक्खा—

ब्रजबासिन को हेतु ह्रदय में राखि मुरारी।
सब यादव सों कह्यो बैठि कै सभा मँझारी।।
बड़ो पर्ब रबि गहन, कहा कहौं तासु बड़ाई।
चलौ सबै कुरुछेत्र, तहाँ मिलि न्हैये जाई।।

सदल-बल यदुवंशी कुरुक्षेत्रकी ओर चल पड़े। उसी मुहूर्तमें व्रजराज नन्दने भी समस्त पुरवासियोंके सहित ग्रहण-स्नानके लिये वहीं जानेका विचार

किया। तथा जब उन्हें यह सूचना मिली कि श्रीवसुदेव श्रीकृष्णचन्द्रको लिये वहाँ आ रहे हैं, तब तो फिर क्षणभरका भी विलम्ब न करके वे चल पड़े। सखियोंके सहित भानुकिशोरी भी चल पड़ीं। चलते समय किशोरीके मार्गमें शुभ शकुन होने लगे——

बायस गहगहात सुभ बानी बिमल पूर्ब दिसि बोली।

× × ×

आखिर उसी तीर्थपर एकान्तमें श्रीराधाकिशोरी एवं श्रीकृष्णचन्द्रका मिलन हुआ। आह ! उस मिलनको चित्रित करनेकी सामर्थ्य तो वाग्वादिनी सरस्वतीमें भी नहीं। वे इतना ही कह सकती हैं——

राधा माधव भेंट भई।
राधा माधव, माधव राधा, कीट भृंग गति है जु गई।।
माधव राधा के रँग राचे, राधा माधव रंग रई।
माधव राधा प्रीति निरंतर रसना कहि न गई।।

× × × ×

दूसरे दिन द्वारकेश्वरी रुक्मिणी श्रीकृष्णचन्द्रसे पूछती हैं——

बूझति है रुक्मिणी——पिय ! इनमें को वृषभानुकिशोरी।
नैक हमैं दिखरावहु अपनी बालापन की जोरी।।
परम चतुर जिन कीने मोहन अल्प बैस ही थोरी।
बारे ते जिहि यहै पढ़ायौ बुधि बल कल बिधि चोरी।।
जाके गुन गनि गुथति माल कबहूँ उर ते नहिं छोरी।
सुमिरत सदा बसतहीं रसना दृष्टि न इत उत मोरी।।

सजल नयन हुए श्रीकृष्णचन्द्र संकेत कर देते हैं——

वह देखौ जुबतिन में ठाढ़ी नीलबसन तनु गोरी।
सूरदास मेरो मन वाकी चितवन देखि हर्‍यो री।।

× × × ×

अपने हृदयका समस्त आदर भानुकिशोरीको समर्पितकर द्वारकेश्वरी उन्हें अपने स्थानपर ले आयीं। वृन्दावनेश्वरी एवं द्वारकेश्वरी एक आसनपर सुशोभित हुईं——

रुक्मिनि राधा ऐसे बैठीं।
जैसे बहुत दिनन की बिछुरीं एक बाप की बेटीं।।
एक सुभाउ एक लै दोऊ, दोऊ हरि को प्यारी।
एक प्रान, मन एक दुहुँन को, तनु करि देखिअत न्यारी।।

निज मंदिर लै गई रुक्मिनी, पहुनाई बिधि ठानी।
सूरदास प्रभु तहँ पग धारे, जहाँ दोऊ ठकुरानी।।

आतिथ्य ग्रहण करके राधाकिशोरी अपने विश्रामागारमें चली आयीं।

× × × ×

अर्द्धनिशाका समय है। श्रीकृष्णचन्द्र पर्यंकपर विराजित हैं। सती रुक्मिणी अपने स्वामीकी पादसेवा (पैर दबानेकी सेवा) करने जा रही हैं।

हैं! हैं! यह क्या! श्रीकृष्णचन्द्रके समस्त चरणतल, गुल्फ, चरणोंकी अंगुलियाँ—सभी फफोलोंसे भरे हैं। रुक्मिणी थर-थर काँपने लगती हैं, उनका मुख अत्यन्त विषण्ण हो जाता है।

मेरे स्वामिन् बताओ, नाथ! कहाँ आग थी? कहाँ तुम्हारे पैर पड़ गये? दासीकी वञ्चना मत करो!—रुक्मिणीने श्रीकृष्णचन्द्रके दोनों हाथोंको अपने हाथमें लेकर कातर स्वरमें यह पूछा। किंतु उत्तरके लिये श्रीकृष्णचन्द्र उन्हें टालने लगे। भीष्मकनन्दिनी भी बिना जाने छोड़नेवाली न थीं। द्वारकेश्वरीसे हार मानकर आखिर श्रीकृष्णचन्द्रको अपने पैर जलनेका सच्चा हेतु बताना ही पड़ा। वे संकुचित हुए-से बोले—आज भानुकिशोरी तुम्हारा आतिथ्य ग्रहण कर रही थीं, उनकी छाया पड़कर तुम भी मतवाली हो गयी थी। उमंगमें भरकर तुमने परम सुस्वादु विविध पदार्थ उन्हें खिलाये, अमृतके समान परम मधुर सुवासित जल पिलाया, पर दूध पिलाना भूल गयी। फिर मेरे संकेतपर तुम्हें स्मरण हुआ, मधुरातिमधुर दुग्ध तुमने उन्हें फिरसे जाकर स्वयं पान कराया। उनके प्रेममें तुम अपने आपको भूल-सी गयी थी; तुमने यह नहीं देखा कि दूध अधिक उष्ण तो नहीं है। पर वास्तवमें वह दूध आवश्यकतासे अधिक उष्ण था। भानुनन्दिनीको यह पता नहीं कि तुम उन्हें क्या पिला रही हो। तुम पिलाती गयी, वे पीती गयीं। उनके हृदयमें मेरे ये चरण नित्य वर्तमान रहते हैं। वह उष्ण दुग्ध मेरे चरणोंपर ही गिर रहा था। उसी दूधसे जलकर ये फफोले हुए हैं।

'ओह! जिनके हृदयमें श्रीकृष्णचन्द्रके चरण—भावनामय नहीं—वास्तवमें ही साक्षात्‌रूपसे नित्य विराजित रहते हैं, उन भानुकिशोरीके प्रेमकी तो मैं छाया भी नहीं छू सकती।'—द्वारकेश्वरी मूर्छित होकर पर्यंकपर गिर पड़ीं।

× × × ×

भानुकिशोरीसे मिलने पुनः श्रीकृष्णचन्द्र आये। देखा किशोरी ललितासे कुछ कह रही हैं। छिपकर सुनने लगे। किशोरी यह कह रही थीं—

प्रियः सोऽयं कृष्णः सहचरि कुरुक्षेत्रमिलित-
स्तथाहं सा राधा तदिदमुभयोः संगमसुखम्।

तथाप्यन्तः खेलन्मधुरमुरलीपञ्चमजुषे
मनो मे कालिन्दीपुलिनविपिनाय स्पृहयति।।

'सखि! प्रियतम श्रीकृष्ण वही हैं, कुरुक्षेत्रमें मिल भी गये; तथा मैं राधा भी वही हूँ, हमलोगोंका मिलन–सुख भी वही है। तथापि मेरा मन तो प्रियतमकी मधुर पञ्चमस्वरमें भरती हुई वंशीध्वनिसे झंकृत कालिन्दीतीरवर्ती वृन्दावनको चाह रहा है। मैं चाहती हूँ, बहिन! वृन्दावनमें प्रियतमको देखूँ।'

यह सुनते ही श्रीकृष्णचन्द्र सामने आ जाते हैं, भानुकिशोरीको हृदयसे लगा लेते हैं। क्षणभरमें ही कुरुक्षेत्रका अस्तित्व विलीन हो जाता है, उसका चिह्नतक अवशिष्ट नहीं रहता। वहाँ तो अब वृन्दावन है, प्रिया–प्रियतम मिल रहे हैं, रसमयी कालिन्दी प्रवाहित हो रही हैं।

अन्तर्धान

जिस स्थानपर ब्राह्मणपत्नियोंने श्रीकृष्णचन्द्रको अन्नदान देकर तृप्त किया था, उसी स्थानपर भाण्डीरवनमें वटके नीचे श्रीकृष्णचन्द्र विराजित हैं। द्वारकापुरीसे आये हुए हैं। उनके वामपार्श्वमें श्रीराधाकिशोरी हैं। दक्षिण पार्श्वमें नन्द–यशोदा हैं। नन्ददम्पतिके दक्षिण पार्श्वमें कीर्तिदा–वृषभानु विराजित हैं। तथा इन सबको चारों ओरसे घेरकर असंख्य गोप–गोपियोंकी श्रेणी सुशोभित है।

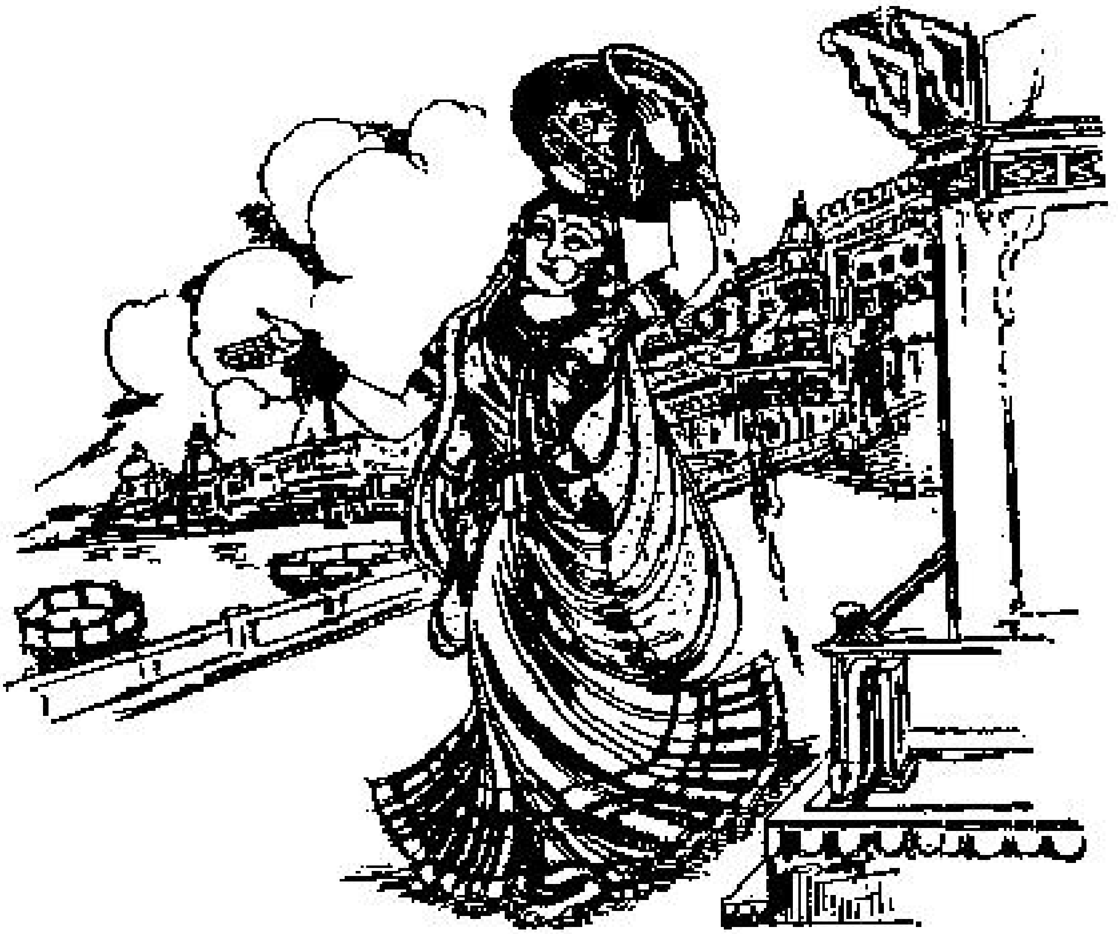
इसी समय एक दिव्यातिदिव्य अत्यन्त मनोहर रथ आकाशसे नीचे उतरता है। रथ चार योजन विस्तृत है, पाँच योजन ऊँचा है, इन्द्रसार रत्नसे निर्मित है; वर्ण विशुद्ध स्फटिकके समान है। रथके ऊपर अमूल्य दिव्य रत्नकलश है, सर्वत्र दिव्य हीरकहार झूल रहे हैं, कभी म्लान न होनेवाले दिव्यातिदिव्य पारिजात कुसुमोंकी बनी मालाओंसे वह विभूषित है, अगणित कौस्तुभ उसमें पिरोये हुए हैं। रथमें सहस्र कोटि मन्दिर बने हुए हैं, मन्दिर सूक्ष्मातिसूक्ष्म दिव्य वस्त्रसे आच्छादित हैं; दो सहस्र चक्रों (पहिये) पर वह निर्मित है, उसमें दो सहस्र अत्यन्त दिव्य अश्व जुड़े हुए हैं। कोटि गोपोंसे वह रथ परिवृत है।

श्रीकृष्णचन्द्र संकेत करते हैं। श्रीराधाकिशोरी उठती हैं, रथपर आरोहण करती हैं। वे असंख्य व्रजपुरवासी भी क्षणभरमें ही रथपर बैठ जाते हैं। देखते–देखते ही रथ गोलोकधामकी यात्रामें चल पड़ता है, अन्तर्हित हो जाता है—

गोलोकं च ययौ राधा सार्द्धं गोलोकवासिभिः।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

श्रीराधा अवतरित हुए गोलोकवासियोंके साथ गोलोकमें पधार जाती हैं।



प्रेम–प्रतिमा श्रीगोपीजन

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः।
मामेव दयितं प्रेष्ठमात्मानं मनसा गताः॥

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—'उन गोपियोंका मन मेरा मन हो गया है; उनके प्राण, उनका जीवनसर्वस्व मैं ही हूँ। मेरे लिये उन्होंने अपने शरीरके सारे सम्बन्धोंको छोड़ दिया है। उन्होंने अपनी बुद्धिसे केवल मुझको ही अपना प्यारा, प्रियतम और आत्मा मान लिया है।'

कलिन्दनन्दिनी श्रीयमुनाजीके तटपर बृहद्वन नामका एक अतिशय सुन्दर वन था। इस वनमें एवं वनके पार्श्व–देशोंमें अनेकों व्रज बसे हुए थे। इन व्रजोंमें अगणित गोप निवास करते थे। प्रत्येक गोपके पास अपार गोधनकी सम्पत्ति थी। गोपालन ही इनकी एकमात्र जीविका थी। सब घरोंमें दूध–दधिकी धारा बहा करती। बड़े सुखसे इनका जीवन बीतता था। छल–कपट ये जानते ही नहीं थे। धर्ममें पूर्ण निष्ठा थी। इन्हीं गोपोंके घर श्रीगोपीजनोंका अवतरण हुआ था—विश्वमें श्रीकृष्णप्रेमका आदर्श स्थापित करनेके लिये, एक नवीन मार्ग

दिखाकर त्रितापसे जलते हुए जगत्‌के प्राणियोंको और उधर परमहंस मुनिजनोंको भगवत्प्रेमसुधाकी धारासे सिक्तकर, उस प्रवाहमें बहाकर अचिन्त्य अनिर्वचनीय चिन्मय आनन्दमय लीलारससिन्धुमें सदाके लिये निमग्न कर देनेके लिये।

लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्वकी बात है, उपर्युक्त व्रजोंके गोपोंके एकच्छत्र अधिपति महाराज नन्दके पुत्ररूपमें यशोदारानीके गर्भसे परब्रह्म पुरुषोत्तम गोलोकविहारी स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका अवतार हुआ। व्रजपुरकी वसुन्धरापर यशोदानन्दनकी विश्वमोहिनी लीला प्रसरित हुई। सबको अपने सौभाग्यका परम फल प्राप्त होने लगा। इनमें सर्वप्रथम अवसर मिला वहाँकी वात्सल्यवती गोपियोंको। इन व्रजोंमें जितनी पुत्रवती गोपियाँ थीं, सबने अखिल ब्रह्माण्डनायक यशोदानन्दनको अपने अंकमें धारण किया, वे उन्हें अपना स्तनदुग्ध पिलाकर कृतार्थ हुईं। योगीन्द्र—मुनीन्द्रगण अपने ध्यानपथमें भी जिनका स्पर्श पा लेनेके लिये सदा लालायित रहते हैं, उन अनन्तैश्वर्यनिकेतन महामहेश्वरको, अपने विशुद्ध वात्सल्यमय प्रेमकी भेंट चढ़ाकर इन गोपियोंने—मानो वे उनके ही हाथकी कठपुतली हों—इस रूपमें पाया। सर्वेश्वरकी वह प्रेमाधीनता, भक्तवश्यता देखने ही योग्य थी—

देत करताल वे लाल गोपाल सों
पकरि व्रजबाल कपि ज्यों नचावैं।
कोउ कहै ललन पकराव मोहि पाँवरी,
कोउ कहै लाल बलि लाओ पीढ़ी।
कोउ कहै ललन गहाव मोहि सोहनी,
कोउ कहै लाल चढ़ि जाउ सीढ़ी॥
कोउ कहै ललन देखौं मोर कैसे नचैं,
कोउ कहै भ्रमर कैसे गुंजारैं।
कोउ कहै पौर लगि दौर आओ लाल!
रीझ मोतीन के हार वारैं॥
जो कछु कहैं व्रजवधू सोइ सोइ करत,
तोतरे बैन बोलन सुहावैं।
रोय परत वस्तु जब भारी न उठै तबै,
चूम मुख जननी उर सौं लगावैं॥
दैन कहि लौनी पुनि चाहि रहत वदन,
हँस स्वभुज बीच लै लै कलोलैं।

धाम के काम ब्रजबाम सब भूल रहीं,
कान्ह बलराम के संग डोलैं।।
सूर गिरिधरन मधु चरित मधु पान कै,
और अमृत कछु आन लागै।
और सुख रंक की कौन इच्छा करै,
मुक्तिहू लौन सी खारी लागै।।

किंतु इन वात्सल्यवती गोपिकाओंकी अपेक्षा भी निर्मलतर, निर्मलतम प्रेमका निदर्शन व्यक्त हुआ मधुरभावसे श्रीकृष्णचन्द्रके प्रति आत्मनिवेदन, सर्वसमर्पण करनेवाली श्रीगोपीजनोंमें। व्रजकी इन गोपकुमारिकाओंका, गोपसुन्दरियोंका श्रीकृष्णप्रेम जगत्‌के अनादि इतिहासमें सर्वथा अप्रतिम बना रहेगा। प्रेमकी जैसी अनन्यता इनमें हुई और फिर सर्वथा निर्बाध भगवत्सेवाका जो अधिकार इन्हें प्राप्त हुआ, वह अन्यत्र कहीं है ही नहीं।

उस समयकी बात है जब व्रजराजकुमार रेंगते हुए अपने आँगनमें खेल रहे थे। कुछ बड़ी आयुकी गोपकुमारिकाएँ भी अपनी जननियोंके साथ नन्दभवनमें इन्हें देखने आया करतीं। सब–की–सब सरलमति बालिकाएँ थीं, पर श्रीकृष्णचन्द्रके महामरकत–श्यामल अंगोंपर दृष्टि पड़ते ही इनकी दशा विचित्र हो जाती। ये ऐसी निष्पन्द हो जातीं मानों सचमुच कनक–पुत्तलिका ही हों। न जाने, इनकी समस्त शैशवोचित चञ्चलता उस समय कहाँ चली जाती। जो गोपबालक थे, वे जब श्रीकृष्णचन्द्रके समीप आते, उनकी माताएँ जब उन्हें नीलसुन्दरके पास लातीं, तब वे तो अतिशय उल्लासमें भरकर किलकने लगते, अत्यन्त चञ्चल हो उठते। पर उनमें सर्वथा विपरीत दशा इन बालिकाओंकी होती, वे विचित्र गम्भीर हो जातीं। केवल इनकी ही नहीं; जो बहुत छोटी थीं, अथवा श्रीकृष्णचन्द्रकी समवयस्का या उनसे कुछ मास बड़ी थीं, उनकी भी यही दशा होती। वृद्धा गोपिकाएँ स्पष्ट देखतीं—'यह सुकुमार कलिका–सी नन्हीं बालिका—जिसे जन्मे एक वर्ष भी पूरा नहीं हुआ है, उसने देखा यशोदाके नीलमणिकी ओर केवल आधे क्षण भर ही, और बस, माताकी गोदमें वह सर्वथा स्थिर हो गयी, उसके नेत्रोंका स्पन्दन भी रुद्ध हो गया।' माताएँ एकबार तो आश्चर्य करने लगतीं। पर फिर तुरन्त ही उनका समाधान हो जाता—'इस साँवरे शिशुका रूप ही ऐसा है—जड़में विकृति हो जाती है, ये तो चेतन हैं।' उन माताओंको क्या पता कि ये समस्त बालिकाएँ व्रजमें जन्मी ही हैं श्रीकृष्णचन्द्रके लिये। वे नहीं जानतीं कि ये नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र ही

त्रेताके दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र हैं। कोशलपुरसे मिथिला पधारे थे। श्रीजनकनन्दिनीका स्वयंवर था। धनुर्भंगके अनन्तर श्रीवैदेहीने जयमाल राघवेन्द्रके गलेमें डाली। रघुकुलचन्द्रका विवाह सम्पन्न हुआ। उस समय मिथिलाकी पुरन्ध्रियाँ उनका कोटि—मदन—सुन्दर रूप देखकर विमोहित हो गयीं। प्राणोंमें उत्कण्ठा जाग उठी—'आह, हमारे पति ये होते !' किंतु सर्वसमर्थ श्रीराघव उस समय तो मर्यादापुरुषोत्तम थे। इसीलिये सत्यसंकल्प प्रभुने यही वरदान दिया—देवियो ! शोक मत करो, 'मा शोकं कुरुत स्त्रियः'; द्वापरके अन्तमें तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा—

द्वापरान्ते करिष्यामि भवतीनां मनोरथम्।

परा श्रद्धा एवं भक्तिके द्वारा तुम सब व्रजमें गोपी बनोगी—

श्रद्धया परया भक्त्या व्रजे गोप्यो भविष्यथ।

उसीके परिणामस्वरूप वे मिथिलाकी ललनाएँ ही बालिकाएँ बनकर उनके घर पधारी हैं, श्रीकृष्णचन्द्रके चारु पादपद्मोंमें न्यौछावर होनेके लिये ही आयी हैं—भला, इस रहस्यको वे वृद्धा भोली गोपिकाएँ क्या जानें ? इसके अतिरिक्त कोशलदेशकी ओर लौटते हुए दूल्हा श्रीरामको देखकर न जाने कितनी पुर—रमणियाँ विमोहित हुईं और अशेषदर्शी कोशलेन्द्रनन्दनने उन्हें भी यह मूक स्वीकृति दी थी—'व्रजे गोप्यो भविष्यथ'। अपने वनवासी रूपके दर्शनसे मुग्ध हुए दण्डकारण्यके ऋषियोंको भी उन्होंने द्वापरके अन्तमें गोपी बननेका वरदान दिया था। प्रजारञ्जनका पवित्र आदर्श रखते हुए राजा रामचन्द्रने अपनी प्राणप्रिया श्रीजानकीका—उनके सर्वथा नित्य पवित्र रहनेपर भी—परित्याग किया। तथा फिर जब—जब वे यज्ञ करने बैठे, तब—तब प्रत्येक यज्ञमें ही उनकी अर्द्धांगिनीके स्थानपर स्वर्णनिर्मित सीता विराजतीं। सर्वेश्वरकी मायाका क्या कहना है—एक दिन वे अगणित स्वर्णसीता—मूर्तियाँ चैतन्यघन बन गयीं और सबके लिये राघवेन्द्रके मुखसे यह वरदान घोषित हुआ था—'तुम सभी पुण्य वृन्दावनमें गोपी बनोगी, मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा।' रुचिपुत्र श्रीयज्ञभगवान्के सौन्दर्यसे विमोहित हुई देवांगनाओंने तपस्या करके, परमा भक्तिसे श्रीहरिको संतुष्टकर गोपी बननेका अधिकार पाया था। श्रुतियोंको गोपी बननेका वरदान मिला था। न जाने किन—किनने श्रीहरिके विभिन्न अवतारोंके द्वारा प्रत्यक्ष या मूक 'एवमस्तु' का वरदान पाकर द्वापरके शेषकालमें गोपीपदका सौभाग्य लाभ किया था। प्रपञ्चगत कितने बड़भागी जीवोंने, बड़े—बड़े ऋषि—मुनियोंने, साक्षात् ब्रह्मविद्या आदिने शत—सहस्र जन्मोंकी

उपासनासे जगदीश्वरकी कृपा प्राप्त की थी और उनके मुखसे निर्गत 'तथास्तु' का बल लेकर व्रजकी गोपी बननेके अधिकारी हुए थे। इन सबकी गणना किसके पास है ? एकमात्र श्रीकृष्णचन्द्रकी अचिन्त्यलीला–महाशक्तिको ही इसका पूर्ण विवरण ज्ञात रहता है। व्रजकी सीधी–सादी वृद्धा गोपियोंको इस रहस्यका क्या पता ! इतना ही नहीं, वे बेचारी नहीं जानतीं कि स्वयं गोलोकविहारी ही व्रजमें पधारे हैं। और जब वे आये हैं, तब गोलोकविहारिणी भी आयी ही होंगी, उनके नित्य परिकरोंका भी अवतरण अवश्य हुआ होगा। धराका दुस्सह दैत्यभारसे पीड़ित होना, विधाताके समीप जाकर अपना दुःख निवेदन करना, ब्रह्माका जगन्नाथकी स्तुति करना, परमपुरुषके अवतरणका संदेश प्राप्त करना, परम पुरुषकी प्राणप्रियाकी सेवाके लिये सुरवनिताओंके प्रति भूतलपर उत्पन्न होनेका आदेश होना—यह कथा इन आभीर–गोपिकाओंने सुनी नहीं है। इसलिये वे कल्पना ही नहीं कर सकतीं कि इन गोप–बालिकाओंके रूपमें नित्यलीलाके महामहिम परिकर हैं, अपने स्वामीकी भुवन–पावनी लीलामें योगदान करने आये हैं; देवांगनाएँ हैं, श्रुतिगण हैं, प्रपञ्चके अगणित सौभाग्यशाली साधन–सिद्ध प्राणी हैं; जो यहाँ गोपी बनकर कृतार्थ होने आये हैं। वे स्वयं कौन हैं, यही उन्हें पता नहीं है। फिर अपनी पुत्रियों—इन गोप–*बालिकाओंके* सम्बन्धमें वे कैसे जानें। श्रीकृष्णचन्द्रकी अघटन–घटना–पटीयसी योगमायाकी यवनिकाकी ओटमें क्या है, इसे कोई जान नहीं सकता। स्मृतिका जितना अंश लीलारसपोषणके लिये आवश्यक होता है, उतने अंशपरसे योगमाया आवरण हटा लेती है; शेषभाग पूर्णतया आवृत ही रहता है। यही कारण है कि यशोदानन्दनको देखते ही इन नन्हीं–सी बालिकाओंकी, अथवा किञ्चित् वयस्का गोपकुमारिकाओंकी दशा ऐसी क्यों हो जाती है, इसका वास्तविक रहस्य ये वृद्धा गोपियाँ नहीं जान सकती थीं।

दिन बीतते क्या देर लगती है। जो वयस्का गोपकुमारिकाएँ थीं, वे ब्याहके योग्य हो गयीं। गोपोंने इन विभिन्न व्रजोंमें अच्छे घर–वर देखकर उनका ब्याह किया। विवाहके सभी संस्कार विधिवत् सम्पन्न हुए, भाँवरें फिरीं। पर आदिसे अन्ततक एक अतिशय आश्चर्यमयी घटना उन दुलहिन बनी हुई गोपबालिकाओंकी आँखोंके सामने घटित हो रही थी। इसे और तो किसीने नहीं देखा; पर बालिका स्पष्टरूपसे अनुभव कर रही थी, वरके—उसके भावी पतिके अणु–अणुमें नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र समाये हुए हैं, उसके साथ भाँवरें नन्दनन्दनने ही दी हैं, उसका पाणिग्रहण श्रीकृष्णचन्द्रने किया है। वह स्वप्न

देख रही है, या जाग्रतमें ही सचमुच ऐसा हो रहा है—वह कुछ समझ नहीं पाती थी। उसका रोम-रोम एक अनिवर्चनीय आनन्दमें परिप्लुत हो रहा था। भ्रान्त-सी हुई वह अपने ब्याहकी विधि देखती जा रही थी। जिसके साथ उसने अपनी सगाईकी बात सुन रक्खी थी, वह वर क्षणभरके लिये भी उसके दृष्टिपथमें न आया। अञ्चलकी ओटमें विस्फारित नेत्रोंसे वह एकत्रित समुदायकी ओर कभी देखती, पर कुछ भी निर्णय नहीं कर पाती। निर्णय कर लेना उसके वशकी बात ही नहीं है। वास्तवमें तो बात यह है—गोपी न तो स्वप्न देख रही थी, न उसे मतिभ्रम हुआ था। वह सर्वथा सत्यका ही दर्शन कर रही थी। सचमुच श्रीकृष्णचन्द्रने ही उसका पाणिग्रहण किया था। जो एकमात्र उनकी ही हो चुकी हैं, उनके लिये ही व्रजमें आयी हैं, उन्हें परपुरुष स्पर्श भी कैसे कर सकता है। यह तो लीलारसकी वृद्धिके लिये विवाहका अभिनय था। इसका नियन्त्रण कर रही थीं श्रीकृष्णचन्द्रकी अचिन्त्यमहाशक्ति योगमाया। लोकदृष्टिमें यह प्रतीति हुई कि अमुक गोपबालाका अमुक गोपबालकके साथ विवाह हुआ। पर सनातन सत्य सिद्धान्त है—व्रजसुन्दरियोंका कभी क्षणभरके लिये भी मायिक पतियोंसे मिलन होता ही नहीं—

न जातु व्रजदेवीनां पतिभिः सह संगमः।

एक कालमें एक ही स्थानपर सत्यको आवृत कर योगमाया किसे कब क्या प्रतीति करा देंगी, इसे वे ही जानती हैं। गोपबालाने अभी-अभी सत्यको प्रत्यक्ष देखा है, किंतु पुनः उसकी स्मृतिमें आगे कितना उलट-फेर वे करती रहेंगी और परिणामस्वरूप उसका श्रीकृष्णप्रेम उत्तरोत्तर कितना निखरता जायगा—इसकी इयत्ता नहीं है। जो हो, प्रायः प्रत्येक विवाहमें ही दुलहिन गोपीको औरोंकी प्रतीतिसे सर्वथा विरुद्ध उपर्युक्त अनुभूति ही हुई। और जहाँ ऐसी अनुभूति नहीं हुई, वहाँ आगे चलकर श्रीकृष्णमिलनमें, भगवत्पादपद्मोंके स्पर्शमें किञ्चित् व्यवधान हो ही गया। उन-उन व्रज-सुन्दरियोंको श्रीकृष्णचन्द्रकी चरणसेवा मिली अवश्य; पर इस देहसे नहीं—इस देहको छोड़ देनेके अनन्तर।

जो गोपकुमारिकाएँ श्रीकृष्णचन्द्रकी समवयस्का थीं या उनसे कुछ ही छोटी या बड़ी थीं—उनके लिये एक दूसरी ही बात हुई। समस्त व्रज बृहद्वनसे उठकर वृन्दावन चला आया और वहाँ *श्रीकृष्णचन्द्रकी वत्सचारणलीला* आरम्भ हुई। फिर उनकी आयुका चौथा वर्ष आरम्भ होनेपर शरद् ऋतुमें ब्रह्माने समस्त गोवत्स एवं गोपशिशुओंका अपहरण किया। एक वर्षके लिये

स्वयं श्रीकृष्णचन्द्र ही विभिन्न व्रजोंके असंख्य बालक एवं गोवत्सोंका रूप धारणकर लीला करते रहे। किसी व्रजवासी गोपीको गन्धतक न मिली कि उनके पुत्र तो ब्रह्माकी मायासे मुग्ध होकर कहीं अन्यत्र पड़े हैं और नन्दनन्दन ही उनकी सन्तानके रूपमें खेल रहे हैं। इसी बीचमें योगमायाकी प्रेरणासे सबने अपनी कन्याओंकी सगाई की। धर्मकी साक्षी देकर सबने व्रजबालक बने हुए श्रीकृष्णचन्द्रको ही अपनी कन्या देनेका वचन दे डाला। सबके अनजानमें ही श्रीकृष्णचन्द्र उन समस्त गोपकुमारिकाओंके भावी पति बन गये।

इस प्रकार गोपसुन्दरियोंके, गोपकुमारिकाओंके श्रीकृष्णसेवाधिकार प्राप्त होनेकी भूमिका प्रस्तुत हुई। और जब नन्दनन्दनको आठवाँ वर्ष लगा एवं लगभग एक मास और बीत गया, वृन्दावनमें शरद्की शोभा विकसित होने लगी, तब श्रीगोपीजनोंमें श्रीकृष्णमिलनकी उत्कण्ठा (पूर्वराग) जगानेका कार्य भी सम्पन्न हो गया। अवश्य ही एक प्रकारसे नहीं। स्वेच्छामय श्रीकृष्णचन्द्रने श्रीगोपीजनोंके प्रेमविवर्धनके लिये जहाँ जो पद्धति उपयुक्त थी, उसीको अपनाया। उनके पौगण्डवयाश्रित श्यामल अंगोंके अन्तरालसे कैशोर झाँक—सा रहा था। और सच तो यह है कि वे तो नित्यकिशोर हैं। इसी कैशोर रूपकी आवश्यकता थी श्रीगोपीजनोंकी आँखोंके लिये, उनके प्रेमोपहारको ग्रहण करनेके लिये। इसीलिये वह उनके समक्ष व्यक्त होने लगा। और फिर एक दिन गूँज उठी वंशीध्वनि। इससे पूर्व भी वंशीका स्वर व्रज—सुन्दरियोंने सुना अवश्य था। पर आजकी तान निराली थी। कर्ण—रन्ध्रोंमें प्रवेश करते ही गोपसुन्दरियोंकी दशा कुछ—की—कुछ हो गयी—

ललना गन अंग अनंग तये। कर तान सरासन बान हये।।
इक मूर्छि गिरि न सम्हार तहाँ। उर माँझ मनोभव पीर महाँ।।
इक आनन चंद लखे ललकै। दृग चाहि चकोर लगी चलके।।
इक तान बिंधी दृग कौं बरखै। इक चालन सीस करै हरखै।।
इक रूप अमी धर ध्यान रही। इक चित्र लिखी इमि भोइ गई।।

वे सचमुच ही क्षणोंमें ही सर्वथा बदल गयीं। हृदयका सञ्चित श्रीकृष्णप्रेम उमड़ा और उसके प्रवाहमें उनके प्राण, मन, इन्द्रियाँ, शरीर——सभी बह चले। योगमायाने इस अवसरपर भी अपने अञ्चलकी किञ्चित् छाया—सी डाल दी। गोपसुन्दरियोंकी स्मृतिका कुछ अंश ढक गया और वे सोचने लगीं, अनुभव करने लगीं कि इससे पूर्व उन्होंने कभी श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन नहीं किये, कभी वंशीकी यह अमृतधारा कर्णपथमें आयी ही नहीं। प्रथम बार श्रीकृष्णचन्द्रके

दर्शन हुए हैं, प्रथम बार वंशीसे झरते हुए पीयूषका वे पान कर सकी हैं। कितनी तो यह भी भूल गयीं कि यह श्यामवर्ण सौन्दर्यनिधि बालक कौन है और परस्पर एक–दूसरीसे परिचय पूछने लगीं— री बहिन! ये किनके पुत्र हैं ?'

गोपसुन्दरियोंके लिये श्रीकृष्णचन्द्रके अतिरिक्त अब अन्य कुछ रहा ही नहीं। वे मन–ही–मन नन्दनन्दनपर न्योछावर हो गयीं। घर, माता–पिता, भाई–बन्धु, पति, सगे–सम्बन्धी—सबकी ममता सिमटकर श्रीकृष्णचन्द्रमें केन्द्रित हो गयी। अब वे अन्यमनस्क–सी रहने लगीं। निरन्तर उनके नेत्र सजल रहने लगे। प्राणोंमें एक विचित्र व्यथा थी, जिसे वे प्रकट भी नहीं कर पाती थीं, सह भी नहीं सकती थीं। श्रीकृष्णदर्शनके लिये सतत व्याकुल रहतीं। प्रातः एवं सायं अपने द्वारपर खड़ी हो जातीं। वन जाते हुए, व्रज लौटते हुए श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन जहाँ जिस स्थानसे हो सकते, वहीं वे चली जातीं। गृहकार्य पड़ा रहता। गुरुजन खीझते, झल्लाते, समझाते; किंतु सिर नीचा कर लेनेके अतिरिक्त वे और कोई उत्तर न देतीं। कितनोंके अंग पीले पड़ गये। अभिभावकोंने समझा ये रुग्ण हो गयी हैं। उनके लिये वैद्य बुलाये गये। वैद्योंने बताया—किसी गहरी चिन्ताके कारण इनकी ऐसी अवस्था हो गयी है। पर क्या चिन्ता है—यह किसीको पता नहीं लग सका। भाव बढ़ते–बढ़ते यह दशा हुई कि उनके द्वारा गृहकार्य होना सर्वथा असम्भव हो गया। वे करें तो क्या करें। उनके नेत्रोंमें, मनमें श्रीकृष्णचन्द्र समा गये थे। सचेत करनेपर वे कार्यभार सँभालने अवश्य चलतीं, पर ज्यों चलतीं, कि दीखता, आगे–पीछे, दाहिन–बायें—चारों ओरसे हमें घेरकर श्रीकृष्णचन्द्र साथ चल रहे हैं। झाड़ू देने चलतीं, तो प्रतीत होता झाड़ूके कण–कणमें श्रीकृष्णचन्द्र समाये हुए हैं। दहीके भाँडमें, मन्थनडोरीमें, मथानीमें श्रीकृष्णचन्द्र खड़े हँसते दीखते। वे कैसे दही बिलोयें ? बर्तन माँजने जातीं, उनके कंकणसे झन्–झन् शब्द होता और उन्हें अनुभव होने लगता—श्रीकृष्णचन्द्रके नूपुरकी रुनझुन–रुनझुन ध्वनि है। वे चकित नेत्रोंसे द्वारकी ओर देखने लगतीं और उन्हें यही भान होता—'वह देखो, द्वारपर वे खड़े हैं।' दीपक सँजोकर वे दीपदान करने चलतीं, पर दीपककी लौमें श्रीकृष्णचन्द्र नाचते दीखते और दीपक हाथसे गिर जाता। चलते–फिरते, सोते–जागते किसी ओर भी दृष्टि फेरते समय श्रीकृष्णचन्द्र उनके सामने निरन्तर बने रहते थे। इस परिस्थितिमें घरके काम कैसे हों। कितनी तो उन्मत्तप्राय हो गयीं। सिरपर दहीका माट लिये वे आतीं नन्दव्रजमें दही बेचने और 'दही लो' के बदले पुकार उठतीं 'श्रीकृष्ण लो!' 'श्रीकृष्ण लो।'

लोग चकित नेत्रोंसे देखते और वे बावरी–सी इस वीथीसे उस वीथीमें फिरती रहतीं। जिनका बाह्य–ज्ञान लुप्त नहीं हुआ था एवं हृदयमें निरन्तर श्रीकृष्णकी स्फूर्ति रहनेपर भी किसी प्रकार अपनेको सँभालनेमें समर्थ थीं, उनका कार्य रह गया था—केवल श्रीकृष्णनामका गान—पनघटपर, यमुनातटपर, गोष्ठमें, व्रजपुरकी गलियोंमें, हाटमें मिलकर परस्पर एक–दूसरीके प्रति अपने प्राणवल्लभ श्रीकृष्णचन्द्रके सम्बन्धकी चर्चा करते रहना—

हे सखि सुनु यह बचन अनूपा। नयनवंत कहँ यह फल रूपा।।
नंदसुअन दरसन तें आना। अपर लाभ कछु मैं नहिं जाना।।
अपर कहत यह बात, अति बिचित्र लखु बेष बर।
ठाढ़े ये दोउ भ्रात, गोप भाग महँ सुभग अति।।
द्वै नटवर सुभ बेष, गावत सुभग सुराग बर।
अस मैं कबहुँ न पेख, गौर स्याम सखि लसत जुग।।
हे सखि यह बंसी बड़भागी। कौन सुकृत इन किय अनुरागी।।
दामोदर अधराधर लागी। रहत निरंतर छन नहिं त्यागी।।
अपर कहै सुनु सखी सयानी। यह बृंदाबन भू सुखदानी।।
स्वर्गहु तें अति सुभग सुहानी। कीरति बिसद भई जग जानी।।
नंदसुअन पद अंकित गाता। अति बिचित्र सब कहँ सुख दाता।।
गिरि के चहुँ दिसि जीव गन, नचत देखि गन मोर।
रहे थकित ह्वै तजि क्रिया, निरखत नंदकिसोर।।
अस सुख अपर लोक नहिं देखा। एहि तें यह छिति सुखद बिसेषा।।

× × × ×

हे सखि ! देखि इहि बनकी हरिनी। जदपि मूढ़मति इनकी बरनी।।
बेनु नाद सुनि अति सचु पावति। पतिन सहित चलि हरि पै आवति।।
सुंदर नंद कुँवर बर बेषा। निरखत लगत न नैन निमेषा।।
प्रेम सहित अवलोकति दूजे। आदर सहित हरिहि जनु पूजे।।
हे सखि ! अपर चित्र इक चही। गगन मैं सुरबनिता किन लही।।
बैठी जदपि बिमानन महियाँ। अपने पतिन सौं दै गरबहियाँ।।
दृष्टि परे साँवरे अनूपा। निपटहिं बनिता उत्सव रूपा।।
पुनि सुनि बेनु गीत गति नई। कल नहिं परत बिकल ह्वै गई।।
हे सखि ! देवधेनु की रही। तुम इन गाइन तन किन चही।।
हरि मुख तैं जु स्रवत है बाल। बेनु गीत पीयूष रसाल।।

श्रवन उठाइ पिवत हैं ऐसैं। नैंक कहूँ छरि जाइ न जैसैं।।
हे सखि ! बन बिहंग किन हेरौ। सुनत जु बेनु गीत पिय केरौ।।
बैठे रुचिर द्रुमन की डारैं। इकटक मोहन बदन निहारैं।।
हे सखि ! चेतन जन की रहौ। ये जु अचेतन ते किन चहौ।।
बेनु गीत सुनि सरिता जिती। उमगि मनोमद बिथकित तिती।।
बन में बल अरु सुंदर स्याम। पसु चारत परसत दिखि घाम।।
निरखहु सजनि मेह कौ नेह। छत्र करि लियौ अपनौ देह।।
देखौ सखी गोबर्धन कहियाँ। परम श्रेष्ठ हरिदासन महियाँ।।
रामकृष्न पद परसन करि कै। रह्यौ जु अति आनंदहि भरि कै।।
हे सखि गिरि गोधन की रहौ। सुंदर नंदकुँवर तन चहौ।।
अद्‌भुत गोपबेष बर करैं। सेली कंध सु मुनि मन हरैं।।
छाँड़े गाइ गहन के काज। किए फिरत ग्वालन कौ साज।।
त्रैलिय रूप माधुरी सरसै। रंग रली मुरली मधु बरसै।।
ता करि हरे सबन के हिए। चर कीने थिर, थिर चर किए।।

इन गोपिकाओंमें न रही थी लज्जा और न रहा था कोई भय। ये निश्चय कर चुकी थीं—

हौं तो चरन कमल लपटानी, जो भावै सो होय री।
× × × ×
जो मेरौ यह लोक जायेगो औ परलोक नसाय री।
नंदनदन को तऊ न छाँड़ू, मिलूँगी निसान बजाय री।।
× × × ×
परमानंद स्वामी के ऊपर सर्बस डारों वार री।

दिन–रात श्रीकृष्णचिन्तन, श्रीकृष्णचरित्रकी चर्चा करती रहकर वे तन्मय हो गयीं—

वर्णयन्त्यो मिथो गोप्यः क्रीडास्तन्मयतां ययुः।।
(श्रीमद्भा० १०। २१। २०)

उन गोपकुमारियोंकी दशा भी विचित्र थी। ये प्रायः श्रीकृष्णचन्द्रके समान वयकी ही थीं। किंतु जैसे नन्दनन्दन कैशोर शोभासे मण्डित हो चुके थे, वैसे ही इनके शैशवकी ओरसे नवयौवन व्यक्त होनेकी प्रस्तावना कर रहा था। सब–की–सब अविवाहिता थीं। इन सबने देखा व्रजराजतनयकी उस सौन्दर्यराशिको; इनके प्राण, मनमें भी वह रूप समा गया। फिर तो आराधना

आरम्भ हुई नन्दनन्दनको पतिरूपमें पानेके लिये। हेमन्तके प्रथम मासमें दल-की-दल ये श्रीयमुनाके तटपर अरुणोदयसे पूर्व एकत्र हो जातीं। परस्परका स्नेह भी अद्भुत ही था। एक दूसरीका हाथ पकड़े उच्चकण्ठसे श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलाका गान करती चलतीं। स्नान करके जलके समीप भगवती कात्यायनी महामाया देवीकी बालुकामयी प्रतिमा बनाकर विविध उपचारोंसे पूजा करतीं और अन्तस्तलकी श्रद्धासे प्रार्थना करतीं—'माता! नन्दनन्दनको हमारा पति बना दो, हम तुम्हें नमस्कार कर रही हैं—'नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः।' एक मासतक निर्बाध यह व्रत चलता रहा। योगेश्वरेश्वर श्रीकृष्णचन्द्रका हृदय द्रवित हो उठा इनकी यह अतुलनीय लगन देखकर। चराचरके अधीश्वर, सर्वव्यापक, अन्तर्यामी, विश्वात्मा, व्रजराजनन्दन स्वयं पधारे उनके व्रतको सफल करनेके लिये। चीरहरण—श्रीकृष्णमिलनमें बाधक समस्त आवरणोंको दूर कर देनेकी पवित्रतम, लीला सम्पन्न हुई। आज इन गोपकुमारिकाओंका सर्वस्व समर्पण-संस्कार पूर्ण हुआ स्वयं अखिलात्मा महामहेश्वर—उनके ही प्रियतम प्राणवल्लभ व्रजराजदुलारेके हाथ सेवाधिकारप्राप्तिका वचन पाकर वे कृतार्थ हुईं। प्राणोंमें गूँज उठा श्रीकृष्णचन्द्रके द्वारा दिया हुआ उस समयका यह वरदान—'देखो, आगामी शारदीय रात्रियोंमें तुम सब मेरे साथ रमण करोगी—मेरे स्वरूपानन्दका निर्बाध उपभोग, मेरी सेवाका सुख पाओगी 'मयेमा रंस्यथ क्षपाः।'

इसके दूसरे वर्ष शारदीय पूर्णिमाकी उज्ज्वल रात्रिमें गोपसुन्दरियोंका, गोपकुमारिकाओंका महारासके लिये आह्वान हुआ। इनकी मिलनोत्कण्ठा चरम सीमाको स्पर्श करने लगी थी। ठीक उसी समय श्रीकृष्णचन्द्रकी वंशी पुनः बज उठी। आज इस समयकी ध्वनि प्रविष्ट भी हुई केवल उनके ही कानोंमें। ध्वनि पुकार रही थी उन्हें ही—उनके नाम ले-लेकर। उनका मन तो श्रीकृष्णचन्द्रके पास था ही। शरीरमें मनकी छायामात्र थी। वह भी आज ध्वनिके साथ ही चली गयी। और तब दौड़ी उस स्वरके पीछे-पीछे सब-की-सब गोपबालाएँ। जो जहाँ जिस अवस्थामें थी, वह वहींसे वैसे ही दौड़ पड़ी। दूध दुहना बीचमें ही रह गया; दुग्धपूर्ण पात्र, सिद्ध हुए भोज्य अन्न चूल्हेपर ही रह गये; भोजन परोसनेका कार्य जितना हो चुका था, उतना ही रह गया; घरके शिशुओंका संलालन, अपने पतियोंकी सेवा धरी रही; अपने सामने भोजनके लिये परसी हुई थाली पड़ी ही रह गयी; अपने शरीरमें अंगरागलेपनकी, अंग-मार्जनकी, नेत्रोंमें अञ्जनदानकी क्रिया भी जितनी हो चुकी थी, उतनी ही रही; और वे

सब कुछ छोड़कर, भूलकर चल पड़ीं श्रीकृष्णचन्द्रकी ओर। कहाँ पहननेके वस्त्र कहाँ पहन लिये गये, किस अंगके आभूषण कहाँ धारण कर लिये गये—कितनी उलट–पुलट हो गयी है, कैसी विचित्र वेषभूषासे सज्जित होकर वे जा रही हैं, यह ज्ञान भी उन्हें नहीं। पति आदि गुरुजनोंने उन्हें रोकनेका कम प्रयास नहीं किया। पर वे तो चली ही गयीं; जा पहुँचीं श्रीकृष्णचन्द्रके चरणप्रान्तमें। हाँ, कुछ अवश्य रोक ली गयीं। पतियोंने द्वार बन्द कर दिये; किन्तु पतियोंका अधिकार बल–प्रयोग शरीरपर ही था न ? मन एवं प्राणपर तो नहीं ? फिर विलम्ब क्यों ? वे रुद्ध हुईं, विरहसे जलती गोपसुन्दरियाँ ध्यानस्थ हो गयीं। श्रीकृष्णचन्द्रके चरण उनके ध्यानपथमें उतर आये। और इधर टूटा उनका समस्त बन्धन। इस गुणमय देहको सदाके लिये छोड़कर वे भी जा खड़ी हुईं अपने प्रियतम प्राणवल्लभ श्रीकृष्णचन्द्रके अत्यन्त समीप 'जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणबन्धनाः।' उनके ये शरीर सचमुच पतिभुक्त हो चुके थे, श्रीकृष्णचन्द्रकी सेवाके अयोग्य थे। प्राकृतांश किञ्चित् अवशिष्ट था उनमें। इसीलिये उनका परित्याग करके ही श्रीकृष्णचन्द्रकी साक्षात् सेवा, सर्वथा निर्बाध परिपूर्ण सेवाका अधिकार वे पा सकीं।

उधर जो वंशीरवसे आकर्षित होकर राशि–राशि गोपसुन्दरियाँ एकत्रित हुई थीं, उनकी पहले तो अत्यन्त कठिन प्रेम–परीक्षा हुई। पर इसमें वे सब–की–सब उत्तीर्ण हुईं। उनके परमोज्ज्वल भावके मूल्यमें विश्वात्मा उनके हाथों बिक गये। गोपसुन्दरियाँ श्रीकृष्णचन्द्रके हृदयसे लगकर कृतार्थ हो गयीं। उसी समय वियोगकी लीला भी हुई, श्रीकृष्णचन्द्र कुछ समयके लिये अन्तर्धान हुए। और तब निखरा गोपसुन्दरियोंके प्रेमका रूप। श्रीकृष्णविरहमें उनके द्वारा घटित चेष्टाएँ, उनका श्रीकृष्णगान, प्रलाप, करुण–क्रन्दन—सभी सदा अद्वितीय रहेंगे। श्रीकृष्णचन्द्र कहीं गये थोड़े थे। वहीं थे; छिपकर प्रेमसुख ले रहे थे। वे उनके बीचमें ही मन्मथ–मन्मथरूपमें प्रकट हो गये। गोपसुन्दरियोंने उनके लिये अपने उत्तरीयका आसन बिछाया। स्नेहभारसे दबे हुए वे विराजे उसी ओढ़नीके आसनपर। कौन ? वे विराजे, जिनके लिये अपने हृदयमें आसन बिछाकर योगेश्वर–मुनीश्वर प्रतीक्षा करते रहते हैं। जो हो, अपने दर्शनसे, प्रेमभरी वाणीसे श्रीकृष्णचन्द्रने सबके प्राण शीतल कर दिये। फिर महारास हुआ। इस प्रकार गोपसुन्दरियोंके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हुए। आदिसे अन्ततक यह ऐसी विश्वपावन लीला हुई कि जिसे श्रद्धापूर्वक निरन्तर सुनकर, गाकर, विश्वके प्राणी आज भी महाभयंकर हृद्रोग—काम–विकारसे त्राण पा लेते हैं।

दो वर्ष कुछ महीनोंतक गोपीजन प्रतिदिन ही अतुलनीय परमानन्दरसका उपभोग करती रहीं। दिनके समय तो वे श्रीकृष्णभावनाके स्रोतमें अवगाहन करती रहतीं एवं रात्रिके समय निमग्न हो जातीं रास-रस-सिन्धुमें। पर सहसा एक दिन उनकी एकमात्र निधि ही छिन गयी, श्रीकृष्णचन्द्र मथुरा चले गये। प्रियतमके विरहमें उनकी क्या दशा हुई—इसे कोई कैसे चित्रित करे। उनके अन्तरकी व्यथाको उन्हींके प्राणोंकी छायामें अपने प्राण मिलाकर कोई अतिशय बड़भागी अनुभव भले कर ले, अन्यथा वाणीमें तो वह आनेसे रही। बाह्य दशाके सम्बन्धमें वाणी संक्षेपमें इतना ही कह सकती है—उसके बाद गोपबालाओंने अपने केश नहीं सँवारे, उनकी वे सुचिक्कण काली घुँघराली अलकें—जिन्हें अखिलात्मा स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र स्पर्शकर प्रेम-विह्वल हो जाते—उलझकर जटा-सी बनती गयीं। किसीने फिर गोपसुन्दरियोंके अधरोंपर पानकी लाली नहीं देखी, अंगोंपर उन्हें आभूषण धारण करते नहीं देखा। उनका शरीर क्षीण-क्षीणतर होता गया। मलिन वस्त्र धारण किये यमुनाके तटपर वन-वृक्षोंके नीचे, गिरिराजके चरणप्रान्तमें—जहाँ-जहाँ श्रीकृष्णचन्द्रके चरणचिह्नकी भावना होती, वहीं वे बैठी रहतीं। उनके नेत्र निरन्तर झरते रहते। पहले भी वेश-विन्यास वे अपने लिये तो करती नहीं थीं, करती थीं श्रीकृष्णचन्द्रके सुखके लिये। अपने अंगोंको सजानेके रूपमें इनके द्वारा विशुद्ध भगवत्सेवा होती थी। इनके इस सजे हुए रूपको देखकर श्रीकृष्णचन्द्र सुखी होते हैं, इसीलिये ये शृंगार धारण करती थीं। जब श्रीकृष्ण ही चले गये, तब फिर क्या सजना। यही काम और प्रेममें अन्तर है। 'काम चाहता है अपना सुख, अपनी इन्द्रियोंकी तृप्ति' और 'प्रेम चाहता है एकमात्र सबके नित्य प्रेमास्पदस्वरूप श्रीकृष्णचन्द्रका सुख, अपने द्वारा वे सुखी हों।' श्रीगोपीजनोंमें आदिसे अन्ततक विशुद्ध प्रेमका प्रवाह है। इन्होंने श्रीकृष्णचन्द्रके लिये लोकधर्म—लोकाचारका त्याग किया; वेदधर्म—कर्माचरणको जलाञ्जलि दी; देहधर्म—क्षुत्-पिपासा आदिको भी सर्वथा भूलकर इनके साधनोंकी उपेक्षा कर दी; कौन क्या कहता है, इसकी परवा—लज्जा छोड़ दी। और तो क्या, ये सत्कुलरमणी थीं, आर्यपथमें पूर्ण प्रतिष्ठित थीं, यह इनके लिये दुस्त्यज था, इसे भी इन्होंने श्रीकृष्णचन्द्रके लिये छोड़ दिया; आत्मीय-स्वजनोंका भी परित्याग किया; उनके द्वारा की हुई समस्त ताड़नाकी, भर्त्सनाकी भी उपेक्षा कर दी। अपने सुखके सभी साधनोंको विसर्जनकर इन्होंने श्रीकृष्णचन्द्रसे प्रेम किया। अपने सुखकी वासना, हम श्रीकृष्णसे सुखी हों—यह वृत्ति कभी इनमें जागी ही नहीं। इसीलिये ये

श्रीकृष्णचन्द्रके लिये निरन्तर तड़पती रही, पर इतना निकट होनेपर भी वे कभी मधुपुरी नहीं गयीं। क्या पता, हमारे जानेसे प्रियतमके सुखमें व्याघात हो—इस भावनाने कभी उन्हें वृन्दावनकी सीमासे पार नहीं जाने दिया। इसीको कहते हैं वास्तविक श्रीकृष्णप्रेम। इनके इस निर्मलतम प्रेममें कहीं कामकी गन्ध भी नहीं है। श्रीकृष्ण–सुखके लिये ही इनका श्रीकृष्ण–सम्बन्ध है।

कुछ दिन पश्चात् श्रीकृष्णचन्द्रके भेजे हुए उद्धव आये इन्हें सान्त्वना देने। बड़े ही तत्त्वज्ञानी थे उद्धव। पर आकर डूब गये वे व्रजसुन्दरियोंके प्रेम–पयोधिमें—

उमग्यौ ज्यौं तहँ सलिल, सिंधु लै तन की धारन।
भीजत अंबुज नीर, कंचुकी भूषन हारन।।
ताही प्रेम प्रवाह मैं, ऊधौ चले बहाय।
भले ग्यान की मैंड़ हौ, व्रजमें प्रगट्यौ आय।।
कूलके त्रन भए।।

उद्धव चाहने लगे—'किसी प्रकार इस वृन्दावनमें लता–पत्रके रूपमें उत्पन्न हो जाऊँ और श्रीगोपीजनकी चरणरज मुझपर निरन्तर पड़ती रहे।'

वास्तवमें श्रीकृष्ण–वियोगकी यह लीला तो हुई थी प्रेमकी परिपुष्टिके लिये—'**न विना विप्रलम्भेन सम्भोगः पुष्टिमश्नुते।**' साथ ही यदि यह लीला न होती तो प्रेमकी चरम परिणतिका रूप एवं भगवान्‌की प्रेमाधीनताका उच्चतम निदर्शन जगत्‌में अप्रकट ही रह जाता। श्रीगोपीजन जैसे श्रीकृष्णचन्द्रके लिये व्याकुल थीं, वैसे ही श्रीकृष्णचन्द्र भी उनके लिये सतत व्याकुल रहते थे। केवल द्वारकेशकी रानियाँ—विशेषतः पट्टमहिषियाँ ही जानती थीं कि उनके स्वामीकी क्या दशा है, वृन्दावनकी, श्रीगोपीजनोंकी स्मृतिको लेकर। उन्हें आश्चर्य होता था, वे समझ नहीं पाती थीं। कभी वे सोचने लगतीं कि हममें ऐसी कौन–सी त्रुटि है, जो हमारे नाथके हृदयमें आज भी हमारी अपेक्षा बहुत–बहुत अधिक स्थान सुरक्षित है श्रीगोपीजनोंके लिये। द्वारकेशने उनकी इस शंकाका एक दिन समाधान कर दिया। कहते हैं कि सहसा द्वारकेश्वर रुग्ण हो गये। उस चिदानन्दमय शरीरमें भी कहीं रोग होता है ? यह तो प्रभुका अभिनय था। जो हो, उदरमें पीड़ा थी। सब उपचार हो चुके, पर पीड़ा मिटी नहीं। देवर्षि नारद पधारे। प्रभुने बताया—'देवर्षे ! पीड़ा हो रही है; इसकी ओषधि भी है। पर अनुपान तुम ला दो। किसी सच्चे भक्तकी चरणधूलि ला दो, फिर मैं उसे सिरपर धारणकर स्वस्थ हो जाऊँगा। फिर तो पूरी द्वारावती छान

डाली नारदने और सारे भूतलपर घूम आये। किंतु किसीने भी नरकके भयसे त्रिभुवनपतिको चरणधूलि नहीं दी। वे निराश लौट आये। केवल व्रजमें जाना वे भूल गये थे। प्रभुने आग्रह करके इस बार वहीं भेजा। वियोगिनी व्रजबालाओंने घेर लिया देवर्षिको। वे पूछने लगीं अपने प्रियतमकी कुशल। उन्होंने भी सारी बात बता दी। सबके नेत्र बहने लगे। तुरंत एक साथ ही सबने अपने चरण आगे कर दिये और गद्‌गद कण्ठसे वे बोलीं—'देवर्षे ! जितनी रज चाहिये, ले जाओ। हमारे प्रियतमकी पीड़ा मिट जाय, वे सुखी हो जायँ। इसके बदले यदि हमें अनन्त जन्मोंतक नरकमें जलना पड़े तो यही होने दो। इसीमें हमें परम सुख है। प्रियतमका सुख ही हमारा सुख है, बाबा !' देवर्षिने एक बार तो स्वयं उस पावन रजमें स्नान किया और द्वारका लौट आये। भगवान् तो नित्य स्वस्थ थे ही। पर पट्टमहिषियोंकी आँखें खुल गयीं।

कुरुक्षेत्रमें गोपसुन्दरियोंका श्रीकृष्णचन्द्रसे मिलन हुआ। प्रियतमसे मिलकर वे शीतल हुईं। इसके अनन्तर जब लीला समेटनेका समय आया, गोलोकविहारिणी अपने नित्य धाममें पधारने लगीं, तब श्रीगोपीजन भी उनके साथ ही अन्तर्हित हो गयीं। जो नित्य गोपिकाएँ हैं, उनके लिये तो कोई प्रश्न ही नहीं है। जो साधनसिद्धा गोपिकाएँ थीं, वे भी नित्यलीलामें सदाके लिये प्रविष्ट हो गयीं।

जदपि जसोदा नंद अरु ग्वालबाल सब धन्य।।
पै या जग में प्रेम को गोपी भई अनन्य।।

× × × ×

गोपी पद पंकज पराग कीजै महाराज,
तृन कीजै रावरेई गोकुल नगर कौ।



अष्टसखी

श्रीराधाकिशोरीकी सखियाँ पाँच प्रकारकी मानी जाती हैं—सखी, नित्यसखी, प्राणसखी, प्रियसखी और परमप्रेष्ठसखी। कुसुमिका, विन्ध्या, धनिष्ठा आदि तो 'सखी' कहलाती हैं। कस्तूरी, मणिमञ्जरिका आदि 'नित्यसखी' कही जाती हैं। शशिमुखी, वासन्ती, लासिका आदि 'प्राणसखी' की गणनामें हैं। कुरंगाक्षी, मञ्जुकेशी, माधवी, मालती आदि 'प्रियसखी' कही जाती हैं। तथा श्रीललिता, विशाखा, चित्रा, इन्दुलेखा, चम्पकलता, रंगदेवी, तुंगविद्या और सुदेवी—ये आठ 'परमप्रेष्ठसखी' की गणनामें हैं। ये आठों सखियाँ ही 'अष्टसखी' के नामसे विख्यात हैं।

हृदयसे जुड़ी हुई अनन्त धमनियोंकी भाँति श्रीराधाकी समस्त सखियाँ राधा–हृत्सरोवरसे निरन्तर प्रेमरस लेती हैं, लेकर उस रसको सर्वत्र फैलाती रहती हैं, तथा साथ ही अपना प्रेमरस भी राधा–हृदयमें उँड़ेलती रहती हैं।

इस रसविस्तारके कार्यमें श्रीललिता आदि अष्टसखियोंका सबसे

प्रमुख स्थान है।

श्रीकृष्णचन्द्रकी नित्यकैशोरलीलामें श्रीललिताकी आयु चौदह वर्ष तीन मास बारह दिनकी रहती है। श्रीललितामें यह नित्य दिव्य आवेश रहता है कि इस समय मेरी आयु इतनी हुई है। इसी प्रकार उस लीलामें श्रीविशाखा चौदह वर्ष दो मास पंद्रह दिन, श्रीचित्रा चौदह वर्ष एक मास उन्नीस दिन, श्रीइन्दुलेखा चौदह वर्ष दो मास बारह दिन, श्रीचम्पकलता चौदह वर्ष दो मास चौदह दिन, श्रीरंगदेवी चौदह वर्ष दो मास आठ दिन, श्रीतुंगविद्या चौदह वर्ष दो मास बीस दिन और श्रीसुदेवी चौदह वर्ष दो मास आठ दिनकी रहती हैं। अवश्य ही जब श्रीराधाकिशोरीकी लीलाका प्रपञ्चमें प्रकाश होता है, वे अवतरित होती हैं, तब ये भी उसी प्रकार अवतरित होती हैं—इनका जन्म होता है, कौमार आता है, पौगण्ड आता है, फिर कैशोरसे विभूषित होती हैं।

इन आठ सखियोंका जीवनचरित्र श्रीराधामहारानीकी लीलामें सर्वथा अनुस्यूत रहता है। जो राधाभावसिन्धुका कोई-सा एक कण पा लेते हैं, वे ही इन सखियोंके दिव्य भुवनपावन चरित्रके सम्बन्धमें यत्किञ्चित् जान पाते हैं। वह भी एक-सा नहीं, जो जैसे पात्र हों। हमारे लिये तो इतना ही पर्याप्त है कि श्रीराधाकिशोरीको स्मरण करते हुए हम इनकी वन्दना कर लें—

गोरोचनारुचिमनोहरकान्तिदेहां
मायूरपुच्छतुलितच्छविचारुचेलाम्।
राधे तव प्रियसखीं च गुरुं सखीनां
ताम्बूलभक्तिललितां ललितां नमामि॥

हे राधे! गोरोचनके समान जिनके श्रीअंगोंकी मनोहर कान्ति है, जो मयूरपिच्छके समान चित्रित साड़ी धारण करती हैं, तुम्हारी ताम्बूलसेवा जिनके अधिकारमें है, इस सेवासे जो अत्यन्त ललित (सुन्दर) हो रही हैं, जो सखियोंकी गुरुरूप हैं, तुम्हारी उन प्यारी सखी श्रीललिताको मैं प्रणाम कर रहा हूँ।

सौदामिनीनिचयचारुरुचिप्रतीकां
तारावलीललितकान्तिमनोज्ञचेलाम्।
श्रीराधिके तव चरित्रगुणानुरूपां
सद्गन्धचन्दनरतां विशये विशाखाम्॥

श्रीराधिके! मानो सौदामिनी-समूह एकत्र हो, इस प्रकार तो जिनके अंगोंका सुन्दर वर्ण है, तारिकाश्रेणीकी सुन्दर कान्ति जिनकी मनोहर साड़ीमें भरी हुई है, सुगन्धित द्रव्य, चन्दन आदिसे जो तुम्हारे लिये अंगराग प्रस्तुत

करती है, उनसे तुम्हारा अंग—विलेपन करती है तथा चरित्रमें, गुणमें जो तुम्हारे समान है, तुम्हारी उन विशाखाका मैं आश्रय ग्रहण कर रहा हूँ।

काश्मीरकान्तिकमनीयकलेवराभां
सुस्निग्धकाचनिचयप्रभचारुचेलाम्।
श्रीराधिके तव मनोरथवस्त्रदाने
चित्रां विचित्रहृदयां सदयां प्रपद्ये।।

श्रीराधिके! केशरकी कान्ति—जैसी जिनके कमनीय अंगोंकी शोभा है, सुचिक्कण काचसमूहकी प्रभावशाली सुन्दर साड़ी धारण किये रहती हैं, तुम्हारी रुचिके अनुसार तुम्हें वस्त्र पहनानेमें जो लगी हुई है, जिनके हृदयमें अनेकों विचित्र भाव भरे हैं, जो करुणामें भरी हैं, तुम्हारी उन चित्राकी मैं शरण ले रहा हूँ।

नृत्योत्सवां हि हरितालसमुज्ज्वलाभां
सद्दाडिमीकुसुमकान्तिमनोज्ञचेलाम्।
वन्दे मुदा रुचिविनिर्जितचन्द्ररेखां
श्रीराधिके तव सखीमहमिन्दुलेखाम्।।

श्रीराधिके! जिनके अंगोंकी आभा समुज्ज्वल हरिताल—जैसी है, जो दाडिम—पुष्पोंकी कान्तिवाली सुन्दर साड़ीसे विभूषित हैं, जिनका मुख अत्यन्त प्रसन्न है, प्रसन्नमुखकी कान्तिसे जो चन्द्रकलाको भी जीत ले रही हैं, जो नृत्योत्सवके द्वारा तुम्हें सुखी करती हैं, तुम्हारी उन इन्दुलेखा सखीकी मैं वन्दना करता हूँ।

सद्रत्नचामरकरां वरचम्पकाभां
चाषाख्यपक्षिरुचिरच्छविचारुचेलाम्।
सर्वान् गुणांस्तुलयितुं दधतीं विशाखां
राधेऽथ चम्पकलतां भवतीं प्रपद्ये।।

श्रीराधे! जिनके अंगोंकी आभा चम्पकपुष्प—जैसी है, जो नीलकण्ठ पक्षीके रंगकी साड़ी पहनती हैं, जिनके हाथमें रत्ननिर्मित चामर है, सभी गुणोंमें जो विशाखाके समान हैं, तुम्हारी उन चम्पकलताकी मैं शरण ले रहा हूँ।

सत्पद्मकेसरमनोहरकान्तिदेहां
प्रोद्यज्जवाकुसुमदीधितिचारुचेलाम्।
प्रायेण चम्पकलताधिगुणां सुशीलां
राधे भजे प्रियसखीं तव रंगदेवीम्।।

राधे! जिनके अंगोंकी छवि सुन्दर पद्मपरागके समान है, जिनकी

सुन्दर साड़ीकी कान्ति पूर्ण विकसित जवाकुसुम-जैसी है, जिनमें गुणोंकी इतनी अधिकता है कि चम्पकलतासे भी बढ़ी-चढ़ी हैं, उन अत्यन्त सुन्दर शीलवाली तुम्हारी प्यारी सखी रंगदेवीका मैं भजन करता हूँ।

सच्चन्द्रचन्दनमनोहरकुङ्कुमाभां
पाण्डुच्छविप्रचुरकान्तिलसद्दुकूलाम्।
सर्वत्र कोविदतया महितां समज्ञां
राधे भजे प्रियसखीं तव तुंगविद्याम्॥

राधे! कर्पूरचन्दनमिश्रित कुङ्कुमके समान जिनका वर्ण है, पीतवर्ण कान्तिपूर्ण वस्त्रसे जो सुशोभित हैं, सर्वत्र जिनकी बुद्धिमत्ताका आदर होता है, उन सुयशमयी तुम्हारी प्रियसखी तुंगविद्याका मैं भजन करता हूँ।

प्रोत्तप्तशुद्धकनकच्छविचारुदेहां
प्रोद्यत्प्रवालनिचयप्रभचारुचेलाम्।
सर्वानुजीवनगुणोज्ज्वलभक्तिदक्षां
श्रीराधिके तव सखीं कलये सुदेवीम्॥

श्रीराधिके! उत्तप्त विशुद्ध स्वर्ण-जैसी सुन्दर जिनकी देह है, चमकते हुए मूँगेके रंगकी जो साड़ी धारण करती हैं, तुम्हें जल पिलानेकी सुन्दर सेवामें जो निपुण हैं, तुम्हारी उन सुदेवी सखीका मैं ध्यान कर रहा हूँ।

अष्टसखी

(राग माँड़—ताल कहरवा)

अष्ट सखी करतीं सदा सेवा परम अनन्य।
राधा-माधव-युगलकी, कर निज जीवन धन्य॥
इनके चरण-सरोज में बारंबार प्रनाम।
करुना कर दें श्रीजुगल-पद-रज-रति अभिराम॥

(राग परज—ताल कहरवा)

श्री 'ललिता' लावण्य ललित सखि गोरोचन-आभा-जुत अंग।
विद्युद्-वर्णि निकुञ्ज निवासिनि, वसन रुचिर शिखिपुच्छ सुरंग॥
इन्द्रजाल-निपुणा, नित करती परम स्वादु ताम्बूल प्रदान।
कुसुम-कला-कुशला रचती कल कुसुम-निकेतन कुसुम-वितान॥
सखी 'विशाखा' विद्युद्-वर्णा, रहती बादल-वर्णा कुञ्ज।
तारा-प्रभा सुवसन सुशोभित, मन नित मगन श्याम-पद-कंज॥
कर्पूरादि सुगन्ध-द्रव्य युत लेपन करती सुन्दर अंग।
बूटे-बेल बनाती, रचती चित्र विविध रुचि अंग-प्रत्यंग॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ४८)

श्रीललिता



माताका नाम है—शारदा।

पिताका नाम है—विशोक। (एकमतसे—सत्यकला, सत्यभानु)

अंगकान्ति—गोरोचन-जैसी है।

परिधान वस्त्र—मयूर-पुच्छाभ है।

कुञ्जका रंग—इनका कुञ्ज विद्युद्वर्ण है।

इनकी सेवा—प्रिया-प्रियतमको ताम्बूलकी सेवा अर्पण करती हैं। ये विशुद्ध खण्डिता भावकी मूल स्रोत हैं। अतीत, वर्तमान, भविष्यमें प्रवाहित खण्डिताभावकी प्राकृत धारा इनके विशुद्ध रसमय चिदानन्दमय भावकी ही छाया है। अवश्य ही इनमें जो खण्डिताभाव है वह अपने निमित्तसे व्यक्त नहीं होता। भानुकिशोरी एवं श्रीकृष्णचन्द्रके निर्दिष्ट सम्मिलनमें विलम्ब होनेपर ही इस दिव्य भावका उन्मेष होता है।

इनका प्रिय राग—भैरव-कलिंगड़ा राग इन्हें अत्यधिक प्यारा है। **प्रिय वाद्य है**—वीणा

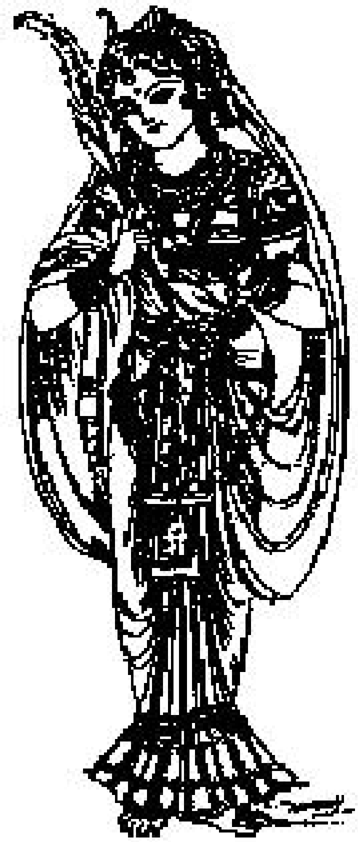
आयु—निकुञ्ज लीलामें इनकी आयु १४ वर्ष ३ महीने १२ दिनकी रहती है।

कुछ विशेष बातें—इनके पितामें जो औदार्य गुण है, वह इनमें पूर्ण रूपसे व्यक्त हुआ है। इनके अधिकारमें प्रिया-प्रियतमकी जो-जो सेवाएँ हैं—उनमें इनकी तीन प्रधान सहायिकाएँ हैं—अनंगमञ्जरी, लवंगमञ्जरी, रूपमञ्जरी।

इनकी आठ सखियाँ हैं—रत्नप्रभा, रतिकला, सुभद्रा, भद्ररेखिका, सुमुखि, धनिष्ठा, कलहंसी, कलापिनी।

सखियोंमें प्रधान ये ही हैं। प्रकारान्तरसे राधारानीकी समस्त लीलाओंकी परम अध्यक्षरूपिणी ये ही हैं। निरन्तर वाम्य एवं प्रखरताका एक अद्भुत सम्मिश्रण इनकी चेष्टाओंमें परिलक्षित होता है। संधिविग्रह—जिस भाँतिसे अधिकाधिक रसपोषण सम्भव है, उसी प्रकारकी चेष्टाओंमें परिव्याप्त रहकर प्रिया-प्रियतमका आनन्दवर्धन करती हैं। पुष्प वितान, पुष्प मण्डल, पुष्पछत्र, पुष्पशय्या, पुष्पगृह आदिकी रचनामें एवं पहेलीकी अर्थअवधारणामें इनके समान निकुञ्जलीलामें कोई नहीं है। इन्द्रजालकी भी पण्डिता हैं।

श्रीविशाखा



माताका नाम—सुदक्षिणा।
पिताका नाम—पावन।
(एकमतसे—गुणकला एवं गुणभानु)
अंगकान्ति—विद्युत्–जैसी है।
परिधान–वस्त्र—इनका तारावलीप्रभ है।
कुञ्जका रंग—मेघ–सा है।
इनकी सेवा—कर्पूर आदि सुगन्धित द्रव्यसे विलोन प्रस्तुत कर प्रिया–प्रियतमके श्रीअंगोंको विलेपित करनेकी विशेष सेवा इनके अधिकारमें है।
इनका भाव—स्वाधीनभर्तृका है। दूसरे शब्दोंमें ऐसा कहें कि इस भावकी अप्राकृत चरम परिणतिकी मूर्ति ये हैं। अतीत अनागत विश्वमें स्वाधीनभर्तृका भावका उन्मेष इनकी सत्तापर ही अवलम्बित है। शेष छः सखियोंमें जो–जो भाव हैं—उनके सम्बन्धमें भी यही बात समझनी चाहिये।
इनका प्रिय राग—सारंग राग इन्हें बहुत प्रिय है।
इनका प्रिय वाद्य—मृदंग।
आयु—निकुञ्जलीलामें इनकी आयु १४ वर्ष २ महीने, १५ दिनोंकी रहती है।
प्रधान सहायिकाएँ—प्रिया–प्रियतमकी सेवामें इनकी प्रधान तीन सहायिकाएँ हैं—मधुमतीमञ्जरी, रसमञ्जरी एवं गुणमञ्जरी। इनकी आठ सखियाँ हैं—माधवी, मालती, चन्द्ररेखिका, कुंजरी, हरिणी, चपला, सुरभि, शुभानना।
कुछ विशेष बातें—जिस क्षण भानुकिशोरीका आविर्भाव हुआ है, उसी क्षण ये भी आविर्भूत हुई हैं। इनके पिता महान् विद्वान् हैं। ये भी पूर्ण विदुषी हैं। इनका परामर्श कभी व्यर्थ नहीं होता। अत्यन्त परिहास कुशल हैं। प्रिया–प्रियतमके मिलनकी विविध युक्तियाँ, नव–नव रसास्वादनके उपाय ये सोचती ही रहती हैं। अंगोंपर पत्रावली आदिकी रचना करनेमें, मालाके संयोगसे विविध शिरोभूषण प्रस्तुत करनेमें तथा विविध सूत्रोंको लेकर सुईसे वस्त्रोंपर बेल–बूटे निकालनेमें अत्यन्त प्रवीण हैं। वस्त्रकी सँभाल रखनेवाली जो सखियाँ एवं दासियाँ हैं, पुष्पलतावल्लरी–वृक्षावलीपर वृन्दादेवीकी जिन–जिन सखियोंका अधिकार है, वे सभी इनके आदेशसे ही काम करती हैं।

श्रीचित्रा



माताका नाम है—चर्चिका।
पिताका नाम है—चतुर।
(एकमतसे—रुचिकला और शुचिभानु)
अंगकान्ति—काश्मीर (केशर)–जैसी है।
परिधान वस्त्र—काचप्रभ है।
कुञ्जका रंग—किञ्जल्क–वर्ण है।

इनकी सेवा है—प्रिया–प्रियतमको वस्त्रालंकारसे विभूषित करना। एक बात ध्यानमें रखनेकी है कि विशुद्ध निकुञ्जमें शृंगार, प्रिया–प्रियतम दोनोंका ही सखियाँ ही करती हैं, किंतु गोष्ठलीला–मिश्रित निकुञ्जलीलामें गोष्ठके समय तो केवल राधारानीकी सेवा ही सखियाँ करती हैं। श्रीकृष्णचन्द्रकी सेवामें गोष्ठके परिकर रहते हैं।

इनका भाव है— दिवाभिसारिका। **राग**—संकटा राग इन्हें अतिशय प्यारा है। **इनका प्रिय वाद्य है**—सितार। **आयु**—निकुञ्जमें इनकी आयु १५ वर्ष १ महीना २६ दिनकी रहती है। **इनकी सेवामें प्रधान सहायिकाएँ हैं**—विमलामञ्जरी, रतिमञ्जरी, मदनमञ्जरी। **इनकी भी आठ सखियाँ हैं**—रसालिका, तिलकनी, शौरसेनी, सुगंधिका, रमिला, कामनागरी, नागरी, नागवेलिका। **कुछ विशेष बातें**—इनके पिता ज्योतिष–शास्त्रमें पारंगत हैं। ये भी ज्योतिषशास्त्रकी पूर्ण पण्डिता हैं। संकेतभाषाका इन्हें विचित्र ज्ञान है। अनेक देशोंकी भाषाओंका भी परिज्ञान है। ये देखकर ही बता देती हैं कि मधु और दुग्ध आदि वस्तु कैसी हैं। किस कीटका संचित मधु है। किस पशुका दूध है। काचके बर्तन बनानेमें बड़ी निपुण हैं। वृक्षोपचार शास्त्र, पशुशास्त्रमें भी इनका पूर्ण अधिकार है। सर्प मन्त्रोंकी भी विशेषज्ञा हैं। रसीली भोज्य वस्तुओंके निर्माणमें सिद्धहस्ता हैं। वृन्दावनकी कुसुमादिविहीन जो दिव्यौषधियाँ हैं, तथा ऐसी जो अन्य वनस्पतियाँ हैं—उनपर अधिकार रखनेवाली समस्त सखियाँ अथवा वृन्दादासिकाएँ इनके आदेशसे ही काम करती हैं।

'चित्रा' अंग–कान्ति केसर–सी, काँच–प्रभा–से बसन ललाम।
कुञ्ज रंग किञ्जल्क कलित अति, शोभामय सब अंग सुठाम॥
विविध विचित्र बसन–आभूषणसे करती सुन्दर सिंगार।
करती सांकेतिक अनेक देशोंकी भाषाका व्यवहार॥

(पद–रत्नाकर, पद सं० ४८)

श्रीइन्दुलेखा



मातका नाम है—बेला।
पिताका नाम है—सागर।
(एकमतसे—वरकला और वरभानु)
अंगकान्ति—हरिताल-जैसी है।
परिधान वस्त्र—दाड़िम कुसुम वर्ण
कुञ्जका रंग—शुभ्र है।
इनकी सेवा है—नृत्यसे प्रिया- प्रियतमको संतुष्ट करना।
इनका भाव—प्रोषितभर्तृका।
इनका प्रिय राग है—विहाग।
प्रिय वाद्य है—मंजीरा।
आयु—निकुञ्जमें इनकी आयु १४ वर्ष २ महीने १२ दिनोंकी रहती है।
प्रधान सहायिकाएँ—सेवा-कार्यमें इनकी प्रधान सहायिकाएँ हैं— श्यामलामञ्जरी, लीलामञ्जरी एवं विलासमञ्जरी।
इनकी आठ सखियाँ हैं—तुंगभद्रा, रसतुंगा, रंगवारी, सुमंगला, चित्रलेखा, विचित्रांगी, मोदिनी, मदनालसा।
इनकी विशेष बातें—इनके पिता प्रसिद्ध गायक हैं। गानविद्यामें ये भी व्रजकी ख्यातिलब्ध गोपसुन्दरी हैं।

सखी 'इन्दुलेखा' शुचि करती शुभ्र-वर्ण शुभ कुञ्ज-निवास ।
अंग-कान्ति हरताल-सदृश, रँग दाडिम-कुसुम वसन सुखरास ।।
करती नृत्य विचित्र भंगिमा संयुत नित नूतन अभिराम ।
गायन-विद्या-निपुणा, व्रजकी ख्यात गोपसुन्दरी ललाम ।।
(पद-रत्नाकर, पद सं० ४८)

श्रीचम्पकलता



माताका नाम—वाटिका।

पिताका नाम—आराम।

(एकमतसे—चन्द्रकला तथा चन्द्रभानु)

अंगकान्ति—चम्पक पुष्प-जैसी है।

परिधान वस्त्रका रंग—नीलकण्ठ पक्षीके समान है।

कुञ्जका रंग—तप्त स्वर्णके समान है।

सेवा—चामर डुलानेकी है।

भाव—वासक सज्जाका है।

प्रिय वाद्य—सारंगी है।

आयु—१४ वर्ष २ माह १४ दिनकी रहती है।

प्रधान सहायिकाएँ—पालिकामञ्जरी, विलासमञ्जरी, केलिमञ्जरी।

इनकी भी आठ सखियाँ हैं— कुरंगाक्षी, सुरति, मंडला, मणिकुंडला, चन्द्रिका, चन्द्रलतिका, कुन्दाक्षी, सुमन्दिरा।

कुछ विशेष बातें—पिता विविध कलाके ज्ञाता तथा ये भी विविध कलाओंकी पण्डिता हैं। अन्य गुणोंमें विशाखाके समान हैं। द्यूतशास्त्रकी महापण्डिता हैं। प्रतिपक्ष यूथकी सखियोंकी इनके आगे एक नहीं चलती। केवल हाथके सहारे मिट्टीके बर्तन, पत्र, पुष्प आदि विविध वस्तुएँ बनानेमें ये अद्वितीय हैं। मिष्टान्न और व्यञ्जन बनानेका इनका कौशल भी अद्वितीय है।

'चम्पकलता' कान्ति चम्पा-सी, कुञ्ज तपे सोनेके रंग।
नीलकण्ठ-पक्षीके रँगके रुचिर वसन धारे शुचि अंग।।
चावभरे चित चँवर डुलाती अविरत नित कर-कमल उदार।
द्यूत-पण्डिता, विविध कलाओं से करती सुन्दर सिंगार।।

(पद-रत्नाकर, पद सं० ४८)

श्रीरंगदेवी



मताका नाम—करुणा।
पिताका नाम—आराम।
(एकमतसे—धर्मकला और धर्मभानु)
अंगकान्ति—पद्मकिंजल्क–सी है।
परिधान वस्त्र—जवाकुसुम वर्ण है।
कुञ्जका रंग—इनका कुञ्ज श्याम रंगका है।
इनकी सेवा—इनकी सेवा अलक्तक लगानेकी है। गोष्ठलीलामें राधाकिशोरीके अलक्तक रागकी सेवा नापित कन्याएँ करती हैं; पर निकुञ्जमें यह सेवा रंगदेवीजीके अधिकारमें है।
इनका भाव—उत्कण्ठिताका है।
आयु—निकुञ्जमें सदा १४ वर्ष २ महीने ८ दिनकी रहती है।
इनकी प्रधान सहायिकाएँ—मंगलामञ्जरी, कुन्दमञ्जरी एवं मदनमञ्जरी हैं।
आठ सखियाँ हैं—कलकण्ठी, शशिकला, कमला, मधुरा, इन्दिरा, कंदर्पसुन्दरी, कामलतिका, प्रेममञ्जरी।
कुछ विशेष बातें—पितामें धर्म पालनकी बड़ी निष्ठा है। इनमें भी स्त्रियोचित व्रत–त्यौहारके प्रति बड़ी आस्था है। शेष बातोंमें प्रायः श्रीचम्पकलताजीके समान हैं। धूप खेनेवाली सखियाँ, शिशिरमें अग्नि रक्षण करनेवाली तथा ग्रीष्ममें विजनकी सेवा करनेवाली सखियाँ, दासियाँ ये सभी इनके आदेशसे काम करती हैं।

सखी 'रंगदेवी' बसती अति रुचिर निकुञ्ज, वर्ण जो श्याम।
कान्ति कमल–केसर–सी शोभित जवा–कुसुम–रँग वसन ललाम॥
नित्य लगाती रुचि कर–चरणोंमें यावक अतिशय अभिराम।
आस्था अति त्यौहार–व्रतोंमें, कला–कुशल शुचि शोभाधाम॥
(पद–रत्नाकर, पद सं० ४८)

श्रीतुंगविद्या



माताका नाम है—मेधा।

पिताका नाम है—पौष्कर।

अंगकान्ति—चन्द्रकुङ्कुम-जैसी है।

परिधान वस्त्र—परिधान पीतवर्ण है।

कुञ्जका रंग—निकुञ्ज अरुणवर्ण है।

सेवा—इनके अधिकारमें गीतवाद्यकी सेवा है।

इनका भाव—विप्रलम्भा है।

आयु—निकुञ्जमें इनकी आयु सदा १४ वर्ष २ महीने २० दिनकी रहती है।

सेवाकार्यमें इनकी प्रधान सहायिकाएँ—धन्यामञ्जरी, अशोकमञ्जरी, मञ्जुलामञ्जरी।

इनकी आठ सखियाँ हैं—मञ्जुमेधा, सुमध्या, मधुरेक्षणा, तनुमध्या, मधुस्पन्दा, गुणचूड़ा, वरांगदा।

कुछ विशेष बातें—इनके पिता स्वाभाविक सबको बड़े प्यारे लगते हैं। ये भी स्वाभाविक सबको अत्यन्त प्रिय हैं। समस्त विद्याओंकी ये खान हैं। ऐसी कोई विद्या नहीं जो तुंगविद्याजी नहीं जानतीं। रसशास्त्र, नीतिशास्त्र, नाट्यशास्त्र, समस्त गान्धर्व-विद्या—इन सबकी ये आचार्या हैं। संगीतमंच, वाद्यमंच, रासमंच आदिपर जितनी सखियाँ एवं दासियाँ काम करती हैं, सब-की-सब इनके पर्यवेक्षणमें काम करती हैं।

सखी 'तुंगविद्या' अति शोभित कान्ति चन्द, कुंकुम-सी देह।
वसन सुशोभित पीत वर्ण वर, अरुण निकुञ्ज, भरी नव नेह॥
गीत-वाद्यसे सेवा करती अतिशय सरस सदा अविराम।
नीति-नाट्य-गान्धर्व-शास्त्र-निपुणा रस-आचार्या अभिराम॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ४८)

श्रीसुदेवी

ये रंगदेवीजीकी जमज बहिन हैं।

अंगकान्ति—सुवर्ण जैसी हैं।

परिधान वस्त्र—प्रवालवर्ण है।

कुञ्ज—हरिदवर्ण है।

सेवा—इनके अधिकारमें जलकी सेवा है।

इनका भाव है—कलहान्तरिता।

आयु—इनकी भी आयु निकुञ्जमें १४ वर्ष २ महीने ८ दिनकी रहती है।



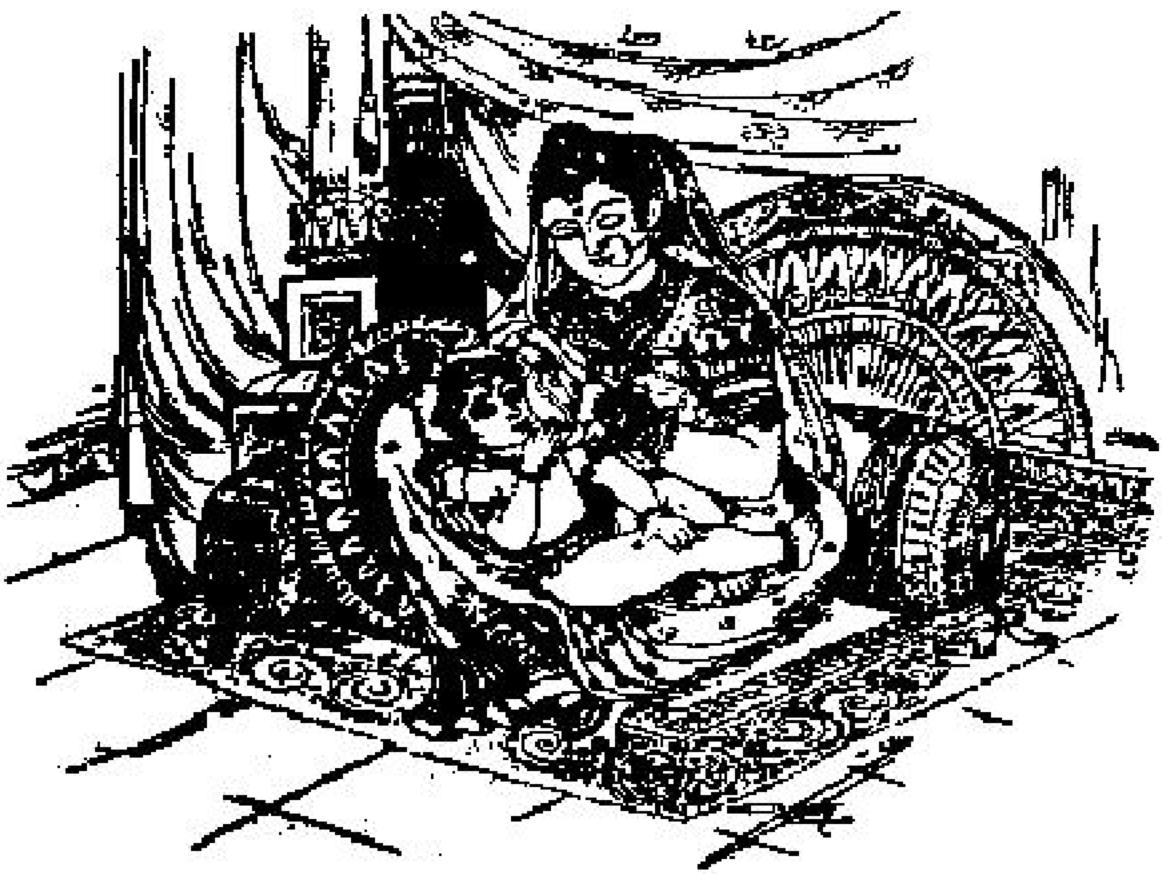
सेवाकार्यमें इनकी सहायिकाएँ हैं—तारकामञ्जरी, सुधामुखी मञ्जरी, पद्ममञ्जरी।

इनकी भी आठ सखियाँ हैं—कावेरी, चारुकबरा, सुकेशी, मञ्जुकेशिका, हारहीरा, महाहीरा, हारकण्ठी, मनोहरा।

कुछ विशेष बातें—ये दौड़नेमें बहुत तेज हैं। आकृति रंगदेवीसे इतनी मिलती है कि दूरसे देखनेपर कितनी बार भ्रान्ति हो जाती है कि रंगदेवीजी आ रही हैं। भानुकिशोरीकी वेणीरचना भी अधिकांश समय ये ही करती हैं। सारिका एवं शुकको शिक्षा देनेमें बड़ी कुशल हैं। तीतर-बटेर लड़ानेकी कला भी इन्हें खूब आती है। शकुनशास्त्रकी पूर्ण पण्डिता हैं। पक्षीके शब्दोंका इन्हें पूर्ण ज्ञान है। चन्द्रोदय, बादल, पुष्प, अग्निके सम्बन्धमें भी इनका ज्ञान अगाध है। दिव्यलीलामें प्रतिपक्षीके भाव, उनकी चेष्टा आदि जाननेके लिये जो सखियाँ एवं दासियाँ गुप्तचरकी भाँति घूमती हैं वे सबकी सब इनके आदेशके अनुसार चलती हैं।

सखी 'सुदेवी' स्वर्ण-वर्ण-सी, वसन सुशोभित मूँगा-रंग।
कुञ्ज हरिद्रा-रंग मनोहर, करती सकल वासना भंग॥
जल निर्मल पावन सुरभितसे करती जो सेवा अभिराम।
ललित लाड़िलीकी जो करती वेणी-रचना परम ललाम॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ४८)



माता यशोदा

नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यंगसंश्रया।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत्प्राप विमुक्तिदात्।।

(श्रीमद्भा० १०। ९। २०)

'मुक्तिदाता भगवान्‌से जो कृपाप्रसाद नन्दरानी यशोदा मैयाको मिला, वैसा न ब्रह्माजीको, न शंकरको, न अर्धांगिनी लक्ष्मीको भी कभी प्राप्त हुआ।'

वसुश्रेष्ठ द्रोणने पद्मयोनि ब्रह्मासे यह प्रार्थना की— देव ! जब मैं पृथ्वीपर जन्म धारण करूँ, तब विश्वेश्वर स्वयं भगवान् श्रीहरि श्रीकृष्णचन्द्रमें मेरी परमा भक्ति हो।' इस प्रार्थनाके समय द्रोणपत्नी धरा भी वहीं खड़ी थीं। उन्होंने मुखसे कुछ नहीं कहा; पर उनके अणु–अणुमें भी यही अभिलाषा थी, मन–ही–मन धरा भी पद्मयोनिसे यही माँग रही थीं। पद्मयोनिने कहा— 'तथास्तु— ऐसा ही होगा।' इसी वरके प्रतापसे धराने व्रजमण्डलके एक सुमुख नामक गोप* एवं उनकी पत्नी पाटलाकी कन्याके रूपमें भारतवर्षमें

* सुमुखका एक नाम महोत्साह भी था।

जन्म धारण किया—उस समय जब कि स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके अवतरणका समय हो चला था, श्वेतवाराहकल्पकी अट्ठाईसवीं चतुर्युगीके द्वापरका अन्त हो रहा था। पाटलाने अपनी कन्याका नाम यशोदा रक्खा। यशोदाका विवाह व्रजराज नन्दसे हुआ। ये नन्द पूर्वजन्ममें वही द्रोण नामक वसु थे, जिन्हें ब्रह्माने वर दिया था।

भगवान्‌की नित्यलीलामें भी एक यशोदा हैं। वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी नित्य माता हैं। वात्सल्यरसकी घनीभूत मूर्ति ये यशोदारानी सदा भगवान्‌को वात्सल्यरसका आस्वादन कराया करती हैं। जब भगवान्‌के अवतरणका समय हुआ तब इन चिदानन्दमयी, वात्सल्यमयी यशोदाका भी इन यशोदा (पूर्वजन्मकी धरा) में ही आवेश हो गया। पाटलापुत्री यशोदा नित्ययशोदासे मिलकर एकमेक हो गयीं। तथा इन्हीं यशोदाके पुत्रके रूपमें आनन्दकंद परब्रह्मपुरुषोत्तम स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अवतीर्ण हुए।

जब भगवान् अवतीर्ण हुए थे, उस समय यशोदाकी आयु ढल चुकी थी। इससे पूर्व अपने पति नन्दके साथ यशोदाने न जाने कितनी चेष्टा की थी कि पुत्र हो; पर पुत्र हुआ नहीं। अतः जब पुत्र हुआ, तब फिर आनन्दका कहना ही क्या है—

सूखत धानन कौं ज्यौं पान्यौ, यों पायौ या पनमें।

—यशोदाको पुत्र हुआ है, इस आनन्दमें सारा व्रजपुर निमग्न हो गया।

× × × ×

छठे दिन यशोदाने अपने पुत्रकी छठी पूजी। इसके दूसरे दिनसे ही मानो यशोदा-वात्सल्य-सिन्धुका मन्थन आरम्भ हो गया, मानो स्वयं जगदीश्वर अपनी जननीका हृदय मथते हुए राशि-राशि भावरत्न निकाल-निकालकर बिखेरने लगे, बतलाने लगे, घोषणा करने लगे—'जगत्‌की देवियों! देखो, यदि तुममेंसे कोई मुझ परब्रह्म पुरुषोत्तमको अपना पुत्र बनाना चाहो तो मैं पुत्र भी बन सकता हूँ; पर पुत्र बनाकर मुझे कैसे प्यार किया जाता है, वात्सल्यभावसे मेरा भजन कैसे होता है—इसकी तुम्हें शिक्षा लेनी पड़ेगी। इसीलिये इन सर्वथा अनमोल रत्नोंको निकालकर मैं जगत्‌में छोड़ दे रहा हूँ, ये ही तुम्हारे आदर्श होंगे; इन्हें पिरोकर अपने हृदयका हार बना लेना। हृदय आलोकित हो जायगा; उस आलोकमें आगे बढ़कर पुत्ररूपमें मुझे पा लोगी, अनन्तकालके लिये सुखी हो जाओगी।' अस्तु,

कंसप्रेरित पूतना यशोदानन्दनको मारने आयी। उसने अपना विषपूरित

स्तन यशोदानन्दनके श्रीमुखमें दे दिया, किंतु यशोदानन्दन विषमय दूधके साथ ही पूतनाके प्राणोंको भी पी गये। शरीर छोड़ते समय श्रीकृष्णचन्द्रको लेकर ही पूतना मधुपुरीकी ओर दौड़ी। आह ! उस क्षण यशोदाके प्राण भी मानो पूतनाके पीछे–पीछे दौड़ चले। यशोदाके प्राण तभी लौटे, तभी उनमें जीवनका संचार हुआ, जब पुत्रको लाकर गोपसुन्दरियोंने उनके वक्षःस्थलपर रक्खा। यशोदाने स्नेहवश उस समय परमात्मा श्रीकृष्णपर गो–पुच्छ फिराकर उनकी मंगलकामना की।

× × × ×

क्रमशः यशोदानन्दन बढ़ रहे थे एवं उसी क्रमसे मैयाका आनन्द भी प्रतिक्षण बढ़ रहा था। यशोदा मैया पुत्रको देख–देखकर फूली नहीं समाती थीं—

जसुमति फूली फूली डोलति।
अति आनंद रहत सगरो दिन हँसि हँसि सब सों बोलति।।
मंगल गाय उठति अति रस सों अपने मन को भायो।
बिकसित कहति देख ब्रजसुंदरि कैसो लगत सुहायो।।

कभी पालनेपर पुत्रको सुलाकर आनन्दमें निमग्न होती रहतीं—

पलना स्याम झुलावति जननी।
अति अनुराग परस्पर गावति, प्रफुलित मगन होति नँद–घरनी।।
उमँगि–उमँगि प्रभु भुजा पसारत, हरषि जसोमति अंकम भरनी।
सूरदास प्रभु मुदित जसोदा, पूरन भई पुरातन करनी।।

इस प्रकार जननीका प्यार पाकर श्रीकृष्णचन्द्र तो आज इक्यासी दिनके हो गये, पर जननीको ऐसा लगता था मानो कुछ देर पहले ही मैंने अपने पुत्रका यह सलोना मुख देखा है। आज वे अपने पुत्रको एक विशाल शकटके नीचे पलनेपर सुला आयी थीं। इसी समय कंसप्रेरित उत्कच नामक दैत्य आया और उस गाड़ीमें प्रविष्ट हो गया, शकटको यशोदानन्दनपर गिराकर वह उनको पीस डालना चाहता था। पर इससे पूर्व ही यशोदानन्दनने अपने पैरसे शकटको उलट दिया, शकटासुरके संसरणका अन्त कर दिया ! इधर जब जननीने शकट–पतनका भयंकर शब्द सुना, तब ये सोच बैठीं कि मेरा लाल तो अब जीवित रहा नहीं। बस, ढाढ़ मारकर एक बार चीत्कार कर उठीं और फिर सर्वथा प्राणशून्य–सी होकर गिर पड़ीं। बड़ी कठिनतासे गोपसुन्दरियाँ उनकी मूर्च्छा तोड़नेमें सफल हुईं। उन्होंने आँखें खोलकर अपने पुत्रको देखा, देखकर रोती हुई ही अपनेको धिक्कार देने लगीं—

बालो मे नवनीततश्च मृदुलस्त्रैमासिकोऽस्यान्तिके
हा कष्टं शकटस्य भूमिपतनाद् भंगोऽयमाकस्मिकः ।
तच्छ्रुत्वापि न मे गतं यदसुभिस्तेनास्मि वज्राधिका
धिङ्मे वत्सलतामहो सुविदितं मातेति नामैव मे ।।

'हाय रे हाय ! मेरा यह नीलमणि नवनीतसे भी अधिक सुकोमल है, केवल तीन महीनेका है और इसके निकट शकट हठात् भूमिपर गिरकर टूट गया। यह बात सुनकर भी मेरे प्राण न निकले, मैं उन्हीं प्राणोंको लेकर अभीतक जीवित हूँ, तो यही सत्य है कि मैं वज्रसे भी अधिक कठोर हूँ। मैं कहलानेमात्रको माता हूँ; मेरे ऐसे मातृत्वको, मातृवत्सलताको धिक्कार है।'

× × × ×

यशोदारानी कभी तो प्रार्थना करतीं—हे विधाता ! मेरा वह दिन कब आयेगा, जब मैं अपने लालको घुटरूँ चलते देखूँगी, दूधकी दँतुलियाँ देखकर मेरे नेत्र शीतल होंगे, इसकी तोतली बोली सुनकर कानोंमें अमृत बहेगा—

नंद घरनि आनँदभरी, सुत स्याम खिलावै।
कबहिं घुटुरुवनि चलहिंगे, कहि बिधिहि मनावै।।
कबहिं दँतुलि द्वै दूध की देखौं इन नैननि !
कबहिं कमल मुख बोलिहैं, सुनिहौं उन बैननि।।
चूमति कर पग अधर भ्रू, लटकति लट चूमति।
कहा बरनि सूरज करै, कहँ पावै सो मति।।

—तथा कभी श्रीकृष्णचन्द्रसे ही निहोरा करने जातीं—

नान्हरिया गोपाल लाल, तू बेगि बड़ौ किन होहि।
इहिं मुख मधुर बचन हँसि कैधौं जननि कहै कब मोहि।।

जननीका मनोरथ पूर्ण करते हुए क्रमशः श्रीकृष्णचन्द्र बोलने भी लगे, बकैयाँ भी चलने लगे फिर खड़े होकर भी चलने लगे। इतनेमें वर्ष पूरा हो गया, यशोदारानीने अपने पुत्रकी प्रथम वर्षगाँठ मनायी। इसी समय कंसने तृणावर्त दैत्यको भेजा। वह आया और यशोदाके नीलमणिको उड़ाकर आकाशमें चला गया। यशोदा मृतवत्सा गौकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ीं—भुवि पतिता मृतवत्सका यथा गौः।

इस बार जननीके जीवनकी आशा किसीको न थी। पर जब श्रीकृष्णचन्द्र तृणावर्तको चूर्ण-विचूर्णकर लौटे, गोपियाँ उन्हें दैत्यके छिन्न-भिन्न शरीरपरसे उठा लायीं, तब तत्क्षण यशोदाके प्राण भी लौट आये—

शिशुमुपसद्य यशोदा दनुजहृतं द्राक् चिचेत लीनापि।
वर्षाजलमुपलभ्य प्राणिति जातिर्यथेन्द्रगोपाणाम्।।

दैत्यके द्वारा अपहृत शिशुको पाकर महाप्रयाण (मृत्यु) में लीन होनेपर भी यशोदा उसी क्षण वैसे ही चैतन्य हो गयीं जैसे वर्षाका जल पाकर इन्द्रगोप (बीरबहूटी)कीटकी जाति जीवित हो जाती है।'

× × × ×

यशोदा एवं श्रीकृष्णचन्द्रमें होड़ लगी रहती थी। यशोदाका वात्सल्य उमड़ता, उसे देखकर उससे सौगुने परिमाणमें श्रीकृष्णचन्द्रका लीलामाधुर्य प्रकाशित होता; फिर इस लीलामाधुरीको देखकर सहस्रगुनी मात्रामें यशोदाका भावसिन्धु तरंगित हो उठता; इन भावलहरियोंसे घुलकर पुनः श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलाकिरणें निखर उठतीं; क्षणभर पूर्व जो थीं उससे लक्षगुणित परिमाणमें चमक उठतीं—इस क्रमसे बढ़कर यशोदाका वात्सल्य अनन्त, असीम, अपार बन गया था। उसमें डूबी हुई यशोदा और सब कुछ भूल गयी थीं, केवल नीलमणि ही उनके नेत्रोंमें नाचते रहते थे। कब दिन हुआ, कब रात्रि आयी—यशोदाको यह भी किसीके बतानेपर ही भान होता था। उनको क्षणभरके लिये भावसमाधिसे जगानेके लिये ही मानो यशोदानन्दनने मृत्तिका-भक्षणकी लीला की। श्रीकृष्णने मिट्टी खाई है, यह सुनकर यशोदा उनका मुख खुलाकर मिट्टी ढूँढ़ने गयीं और उनके मुखमें सारा विश्व अवस्थित देखा, देखकर एकबार तो वे काँप उठीं—किंतु इतनेमें ही श्रीकृष्णचन्द्रकी वैष्णवी मायाका विस्तार हुआ; यशोदा-वात्सल्यसागरमें एक लहर उठी, वह यशोदाके इस विश्वदर्शनकी स्मृतितकको बहा ले गयी, नीलमणिको गोदमें लेकर यशोदा अपने प्यारसे उन्हें स्तनपान कराने लगीं—

अंक में लगाइ नंद नंद को अनंद माइ।
ग्यान गूढ़ भूलि गी, भए सुपुत्र प्रेम आइ।।
देखि बाल लाल की फँसी सु मोह फाँस आइ।
सीस सूँघि चूमि चारु दूध दै हिये अघाइ।।

× × × ×

यशोदा भूली रहती थीं। पर दिन तो पूरे होते ही थे। यशोदाके अनजानमें ही उनके पुत्रकी दूसरी वर्षगाँठ भी आ पहुँची। फिर देखते-देखते ही उनके नीलमणि दो वर्ष दो महीनेके हो गये। पर अब नीलमणि ऐसे, इतने चञ्चल हो गये थे कि यशोदाको एक क्षण भी चैन नहीं। गोपियोंके घर जाकर

तो न जाने कितने दहीके भाँड फोड़ आया करते थे, एक दिन मैयाका वह दहीभाँड भी फोड़ दिया, जो उनके कुलमें वर्षोंसे सुरक्षित चला आ रहा था। जननीने डरानेके उद्देश्यसे श्रीकृष्णचन्द्रको ऊखलमें बाँधा। सारा विश्व अनन्त कालतक यशोदाकी इस चेष्टापर बलिहार जायगा—

जिन बाँध्यौ सुर असुर नाग मुनि प्रबल कर्म की डोरी।
सोइ अविछिन्न ब्रह्म जसुमति हठि बाँध्यौ सकत न छोरी।।

इस बन्धनको निमित्त बनाकर यशोदाके नीलमणिने दो अर्जुनवृक्षोंको जड़से उखाड़ दिया। फिर तो व्रजवासी यशोदानन्दनकी रक्षाके लिये अतिशय व्याकुल हो गये। पूतनासे, शकटसे, तृणावर्तसे, वृक्षोंसे—इतनी बार तो नारायणने नीलमणिको बचा लिया; अब आगे यहाँ इस गोकुलमें तो एक क्षण भी नहीं रहना चाहिये। गोपोंने परामर्श करके निश्चय कर लिया—बस, इसी क्षण वृन्दावन चले जाना है। यही हुआ, यशोदा अपने नीलमणिको लेकर वृन्दावन चली आयीं।

× × × ×

वृन्दावन आनेके पश्चात् श्रीकृष्णचन्द्रकी अनेकों भुवन-मोहिनी लीलाओंका प्रकाश हुआ। उन्हें गोपबालकोंके मुखसे सुन-सुनकर तथा कुछको अपनी आँखों देखकर यशोदा कभी तो आनन्दमें निमग्न हो जातीं, कभी पुत्रकी रक्षाके लिये उनके प्राण व्याकुल हो उठते।

श्रीकृष्णचन्द्रका तीसरा वर्ष अभी पूरा नहीं हुआ था, फिर भी वे बछड़ा चराने वनमें जाने लगे। वनमें वत्सासुर-बकासुर आदिको मारा। जब इन घटनाओंका विवरण जननी सुनती थीं, तब पुत्रके अनिष्टकी आशंकासे उनके प्राण छटपटाने लगते। पाँचवें वर्षकी शुक्लाष्टमीसे श्रीकृष्णचन्द्रका गोचारण आरम्भ हुआ तथा इसी वर्ष ग्रीष्मके समय उनकी कालियदमन-लीला हुई। कालियके बन्धनमें पुत्रको बँधा देखकर यशोदाकी जो दशा हुई थी, उसे चित्रित करनेकी क्षमता किसीमें नहीं। छठे वर्षमें जैसी-जैसी विविध मनोहारिणी गोष्ठक्रीडा श्रीकृष्णचन्द्रने की, उसे सुन-सुन यशोदाको कितना सुख हुआ था, इसे भी वर्णन करनेकी शक्ति किसीमें नहीं। सातवें वर्ष धेनुक-उद्धारकी लीला हुई, आठवें वर्ष गोवर्धनधारणकी लीला हुई, नवम वर्षमें सुदर्शनका उद्धार हुआ, दसवें वर्ष अनेकों आनन्दमयी बालक्रीडाएँ हुईं, ग्यारहवें वर्ष अरिष्ट-उद्धार हुआ, बारहवें वर्षके गौण फाल्गुनमासकी द्वादशीको केशी दैत्यका उद्धार हुआ। इन-इन अवसरोंपर यशोदाके हृदयमें हर्ष अथवा दुःखकी जो धाराएँ फूट निकलती थीं, उनमें यशोदा स्वयं तो डूब ही जातीं, सारे व्रजको भी निमग्न कर देती थीं।

इस प्रकार ग्यारह वर्ष, छः महीने यशोदारानीके भवनको श्रीकृष्णचन्द्र आलोकित करते रहे, किंतु अब यह आलोक मधुपुरी जानेवाला था। श्रीकृष्णचन्द्रको मधुपुरी ले जानेके लिये अक्रूर आ ही गये। वही फाल्गुन द्वादशीकी सन्ध्या थी, अक्रूरने आकर यशोदाके हृदयपर मानो अतिक्रूर वज्र गिरा दिया। सारी रात व्रजेश्वर व्रजरानी यशोदाको समझाते रहे; पर यशोदा किसी प्रकार भी सहमत नहीं हो रही थीं, किसी हालतमें पुत्रको कंसकी रंगशाला देख आनेकी अनुमति नहीं देती थीं। आखिर योगमायाने मायाका विस्तार किया, यशोदा भ्रान्त हो गयीं। अनुमति तो उन्होंने फिर भी नहीं दी, पर अबतक जो विरोध कर रही थीं, वह न करके आँसू ढालने लगीं। विदा होते समय यशोदारानीकी जो करुण दशा थी, उसे देखकर कौन नहीं रो पड़ा। आह !

यात्रामंगलसम्पदं न कुरुते व्यग्रा तदात्वोचितां
वात्सल्यौपयिकं च नोपनयते पाथेयमुद्भ्रान्तधीः।
धूलीजालमसौ विलोचनजलैर्जम्बालयन्ती परं
गोविन्दं परिरभ्य नन्दगृहिणी नीरन्ध्रमाक्रन्दति॥

व्यग्र हुई यशोदा यात्राके समय करने योग्य मंगलकार्य भी नहीं कर रही हैं। इतनी भ्रान्तचित्त हो गयी हैं कि अपने वात्सल्यके उपयुक्त पुत्रको कोई पाथेय (राहखर्च) तक नहीं दे रही हैं, देना भूल गयी हैं। श्रीकृष्णचन्द्रको हृदयसे लगाकर निरन्तर रो रही हैं, उनके अजस्र अश्रुप्रवाहसे भूमि पंकिल हो रही है।

रथ श्रीकृष्णचन्द्रको लेकर चल पड़ा। रथचक्रों (पहियों)के चिह्न भूमिपर अंकित होने लगे, मानो धरारूपिणी यशोदाके छिदे हुए हृदयको पृथ्वीदेवी व्यक्त कर रही थीं।

× × × ×

श्रीकृष्णचन्द्रके विरहमें जननी यशोदाकी क्या दशा हुई, इसे यथार्थ वर्णन करनेकी सामर्थ्य सरस्वतीमें भी नहीं। यशोदा मैया वास्तवमें विक्षिप्त हो गयीं। जहाँ श्रीकृष्णचन्द्र रथपर बैठे थे, वहाँ प्रतिदिन चली आतीं। उन्हें दीखता अभी-अभी मेरे नीलमणिको अक्रूर लिये जा रहे हैं। वे चीत्कार कर उठतीं—'अरे ! क्या व्रजमें कोई नहीं, जो मेरे जाते हुए नीलमणिको रोक ले, पकड़ ले। वह देखो, रथ बढ़ा जा रहा है, मेरे प्राण लिये जा रहा है, मैं दौड़ नहीं पा रही हूँ, कोई दौड़कर मेरे नीलमणिको पकड़ लो, भैया !'

कभी जड़-चेतन, पशु-पक्षी, मनुष्य—जो कोई भी दृष्टिके सामने आ जाता, उसीसे वसुदेवपत्नी देवकीको अनेकों संदेश भेजतीं। उन संदेशोंमें

एक यह भी था—

सँदेसो देवकी सों कहियो।
हौं तो धाय तिहारे सुत की, मया करत नित रहियो।।
जदपि टेव तुम जानत उनकी, तऊ मोहि कहि आवै।
प्रातहि उठत तुम्हारे सुत कों माखन रोटी भावै।।
तेल उबटनो अरु तातो जल देखत ही भजि जावै।
जोइ जोइ माँगत, सोइ सोइ देती, क्रम क्रम करि करि न्हावै।।
सूर पथिक सुनि मोहि रैन दिन बढ्यो रहत उर सोच।
मेरो अलक लड़ैतो मोहन ह्वैहै करत सँकोच।।

किसी पथिकने यशोदाका यह संदेश श्रीकृष्णचन्द्रसे जाकर कह भी दिया। सान्त्वना देनेके लिये श्रीकृष्णचन्द्रने उद्धवको भेजा। उद्धव आये; पर जननीके आँसू पोंछ नहीं सके।

× × × ×

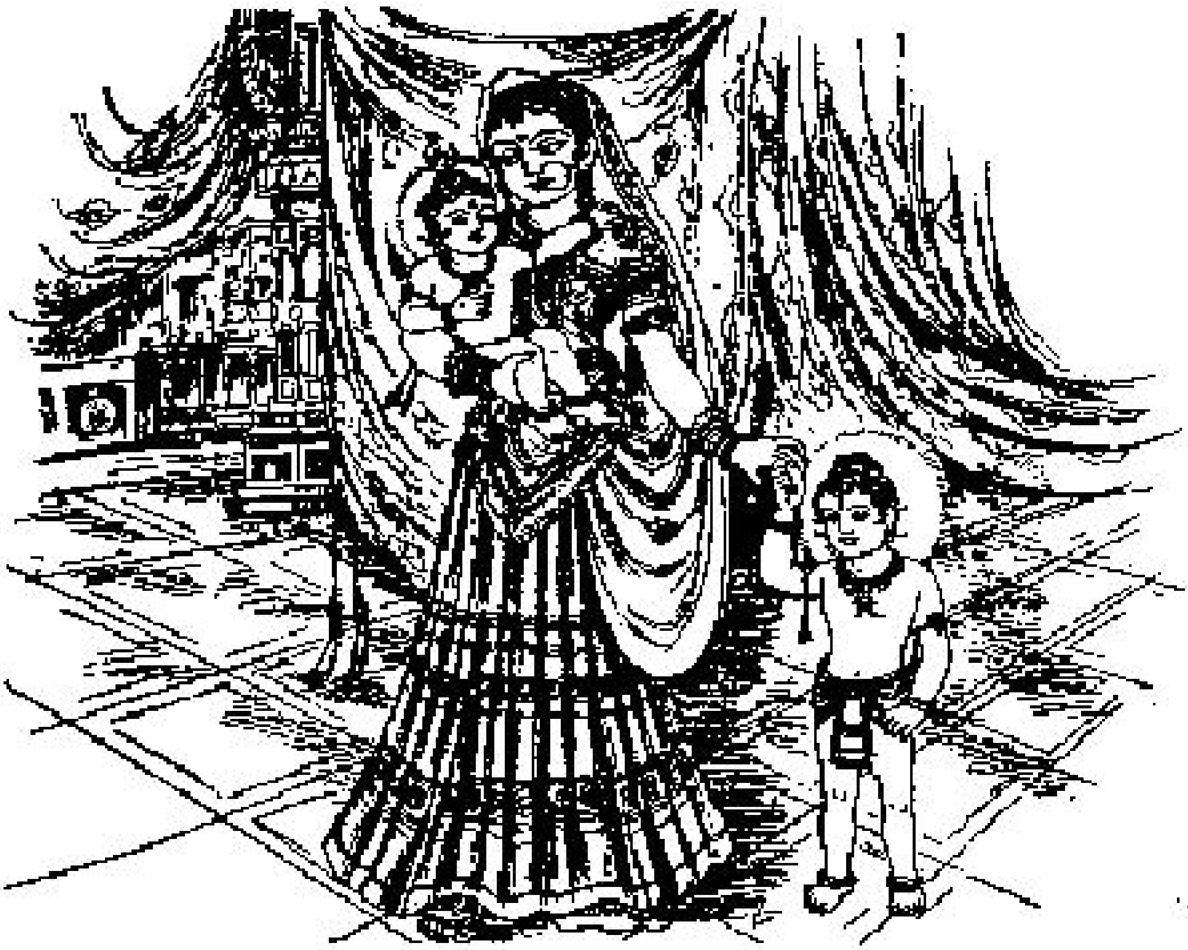
यशोदारानीका हृदय तो तब शीतल हुआ, जब वे कुरुक्षेत्रमें श्रीकृष्णचन्द्रसे मिलीं। राम–श्यामको हृदयसे लगाकर, गोदमें बैठाकर उन्होंने नव–जीवन पाया।

कुरुक्षेत्रसे जब यशोदारानी लौटीं, तब उनकी जानमें उनके नीलमणि उनके साथ ही वृन्दावन लौट आये। यशोदाका उजड़ा हुआ संसार फिरसे बस गया।

× × × ×

श्रीकृष्णचन्द्र अपनी लीला समेटनेवाले थे। इसीलिये अपनी जननी यशोदाको भी पहलेसे भेज दिया। जब भानुनन्दिनी गोलोकविहारिणी श्रीराधिकाकिशोरीको वे विदा करने लगे, तब गोलोकके उसी दिव्यातिदिव्य विमानपर जननीको भी बिठाया तथा राधाकिशोरीके साथ ही यशोदा अन्तर्धान हो गयीं, गोलोकमें पधार गयीं।

———



माता रोहिणी

जब कश्यपजीने वसुदेवके रूपमें जन्म धारण किया, तब उनकी पत्नी सर्पोंकी माता कद्रू भी रोहिणीके रूपमें उत्पन्न हुईं।* समय आनेपर वसुदेवजीसे रोहिणीका विवाह हुआ। इनके अतिरिक्त पौरवी, भद्रा, मदिरा, रोचना, इला, और देवकी आदि और बहुत-सी पत्नियाँ वसुदेवजीके थीं।

जब क्रूर कंसने वसुदेव-देवकीको कारागारमें बन्द कर दिया, तब रोहिणीजी बड़ी व्याकुल हुईं। पर कंससे इनको पति-सेवाके लिये कारागारमें जानेकी आज्ञा मिल गयी। ये वहाँ जाया करतीं। इससे इनका दुःख बहुत कुछ कम हो गया। जब देवकीजीमें सातवें गर्भका प्रकाश हुआ, तब इनमें भी साथ-ही-साथ गर्भके लक्षण दीख पड़े। वसुदेवजीको चिन्ता हुई कि जैसे यह कंस देवकीके पुत्रोंको मार दे रहा है, वैसे ही रोहिणीके पुत्रको भी कहीं शंकावश न मार दे। इस भयसे उन्होंने रोहिणीको अपने भाई व्रजराज नन्दके यहाँ गुप्तभावसे भेज दिया।

---

* यह वर्णन भी मिलता है कि कश्यपपत्नी अदितिके ही दो भाग हो गये। एक भागसे वे देवकीके रूपमें उत्पन्न हुईं, दूसरेसे रोहिणीके रूपमें। कल्प-भेदसे दोनों ही वर्णन सत्य हैं।

जब रोहिणीजी नन्दालय आयी थीं, तब उनके तीन मासका गर्भ था। व्रजपुर आनेके चार मास पश्चात् योगमायाने इनके गर्भको तो अन्तर्धान कर दिया तथा देवकीजीके सातवें गर्भको वहाँसे आकर्षित कर रोहिणीजीमें स्थापित कर दिया। इस प्रकार बलरामजीकी जननी बननेका परम सौभाग्य रोहिणीजीको प्राप्त हुआ। योगमायाद्वारा गर्भस्थापनाके सात मास पश्चात्—सब मिलाकर चौदह मास गर्भ-धारणकी लीला होकर—रोहिणीजीने श्रावणी पूर्णिमाके दिन, श्रीकृष्ण-जन्मसे आठ दिन पूर्व, अनन्तको प्रकट किया। अनन्तरूप बलराम रोहिणीके गर्भसे अवतरित हुए। *

जिस दिनसे रोहिणी नन्दालय पधारी थीं, उसी दिनसे यशोदा एवं रोहिणीमें इतना प्रेम हो गया कि मानो दोनों दो देह, एक प्राण हों। रोहिणीको पाकर यशोदाके आनन्दकी सीमा न रही। उनके आनन्दका एक यह भी कारण था कि रोहिणी अपने पातिव्रत्यके लिये विख्यात थीं। अतः व्रजरानी सोचने लगीं—जब ऐसी सतीके चरण घरमें आ गये हैं, तब मेरी गोद भी अवश्य भर जायगी। हुआ भी यही, सती रोहिणीके पधारनेपर यशोदाका अंक भी श्रीकृष्णचन्द्रसे विभूषित हो ही गया।

व्रजरानी तो रोहिणीके गुणोंको देख-देखकर मुग्ध रहतीं। उन्होंने अपने घरका सारा भार रोहिणीजीके हाथोंमें सौंप रक्खा था, व्रजरानीके घरकी मालकिन तो रोहिणीजी बन गयी थीं। अस्तु, जब रोहिणीजीको पुत्र हुआ, तब नन्दालयमें सर्वत्र आनन्द छा गया। अवश्य ही यह आनन्द प्रकट नहीं हुआ, यशोदारानी जी भरकर उत्सव भी न मना सकीं; क्योंकि भाई वसुदेवका नन्दजीको यह सन्देश मिल चुका था कि रोहिणीजीके पुत्रजन्मकी बात सर्वथा गुप्त रक्खी जाय। व्रजराजने गुप्त भावसे ही रोहिणीजीके पुत्रका जातकर्म पवित्र ब्राह्मणोंके द्वारा करवाया और दक्षिणामें एक लाख गायें दीं। रोहिणीजी पहलेसे ही नन्ददम्पतिके व्यवहारको देखकर उनपर न्यौछावर थीं। पुत्र होनेके अवसरपर जब यह उदारता देखी, तब तो उनका रोम-रोम कृतज्ञतासे भर गया। उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा बह चली। साथ ही पुत्रकी छबि देख-देखकर वे आत्मविस्मृत भी होती जा रही थीं। वह छबि ही जो ऐसी थी—

शुभ्रांशुवक्त्रं तडिदालिलोचनं
नवाब्दकेशं शरदभ्रविग्रहम्।

---

* यह कथा भी आती है कि भाद्रपद शुक्ला षष्ठी बुधवारको मध्याह्नके समय स्वाती नक्षत्रमें—श्रीकृष्ण जन्मसे पूर्व—बलरामका नन्दालयमें आविर्भाव हुआ था। यह भी कल्पभेदसे सत्य है।

भानुप्रभायं तमसूत रोहिणी
तत्तत्र युक्तं स हि दिव्यबालकः ॥

समुदित चन्द्रके समान तो उनका मुख था, विद्युत्-रेखा-जैसी नेत्रोंकी शोभा थी, उसके सिरपर नवजलधरकृष्ण केश थे; समस्त अंगोंकी आभा शारदीय शुभ्र मेघके समान थी, वह बालक सूर्यके समान दुष्प्रधर्ष तेजशाली था। ऐसे परम सुन्दर बालकको श्रीरोहिणीने जन्म दिया। बालकका इस तरह शोभासम्पन्न होना सर्वथा उपयुक्त ही था; क्योंकि यह अस्थि-मज्जा-मेद-मांसनिर्मित प्राकृत शिशु तो था नहीं—यह तो परम दिव्य बालक था। बालक भी कथनमात्रका ही, वास्तवमें तो स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दनका 'अनन्त'-'शेष' नामसे अभिहित रूप ही बालक बनकर आया था।

रोहिणीजीको एक दुःख भूलता न था। वह था पतिवियोगका। पुत्रको देखकर वह दुःखभार बहुत कुछ कम हो गया। फिर भी रह-रहकर भीतर वह स्मृति जाग उठती और रोहिणीजी पतिके लिये व्याकुल हो जातीं; किंतु जिस दिनसे यशोदानन्दनका जन्म हुआ, जिस क्षणसे रोहिणीजीने उन्हें देखा, बस उसी क्षणसे रोहिणीजी मानो सर्वथा बदल गयीं। उनके हृदयकी सारी वेदना, सारी जलन यशोदानन्दनके मुखचन्द्रने हर ली, उनके प्राण शीतल हो गये। व्रजपुरमें आज पहली बार रोहिणीजीको गोपियोंने वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित देखा।

ग्यारह वर्ष, छः महीने राम-श्यामकी मधुर बाललीलाओंसे झरती हुई दिव्यातिदिव्य रसमन्दाकिनी व्रजपुरमें प्रवाहित होती रही; उसमें निरन्तर अवगाहन कर रोहिणी धन्य होती रहीं। इसके पश्चात् राम-श्याम मधुपुर चले गये। कंसका निधन हुआ, वसुदेव कारागारसे मुक्त हुए, पुत्रोंको हृदयसे लगाकर वसुदेवने छाती ठण्डी की। यह होनेपर उन्होंने रोहिणीजीको बुलानेके लिये व्रजपुरमें दूत भेजा। पतिका आह्वान सुनकर रोहिणीजीकी विचित्र ही अवस्था हुई। वे व्याकुल होकर मन-ही-मन सोचने लगीं—

आज्ञा भर्तुर्दिशाप्यथ नवसुतयोर्जातु हातुं न शक्या
सेयं गोविन्दमाता बत कथमिव वा हेयतामाशु यातु।
तस्माद्दैवैकनेत्राश्रयवयसमपि चेद्भागमेकं तनोर्मे
पुत्र्यौ जीवे न कुर्यादपदमिह विधिस्तर्ह्यहं निस्तरेऽयम् ॥

'आह! एक ओर पतिकी आज्ञा है, उसे मैं टाल नहीं सकती; अपने दोनों पुत्रोंको देखनेकी इच्छा छोड़ देना भी मेरे वशकी बात नहीं। पर, हाय!

श्रीकृष्णजननी यशोदाको भी सहसा कैसे छोड़ दूँ। आह ! कदाचित ! विधाता मेरे शरीरके दो भाग कर देता—एक नेत्र एवं आधे अवयव एक शरीरमें, बचा हुआ नेत्र एवं अवशिष्ट अवयव दूसरे शरीरमें, एक तो मधुपुरीके जीवनके लिये एवं एक यहाँ यशोदाकी सँभालके लिये—इस क्रमसे इस उद्देश्यको लेकर यदि दैव मेरे अंगोंको बाँट दे, तो ही मैं इस विपत्तिसागरको पार कर सकूँगी। अन्यथा और कोई उपाय नहीं है।'

रोहिणीजीको अतिशय विषण्ण देखकर यशोदाने रोकर समझाया—'बहिन ! तेरे प्राण एवं मेरे प्राण तो एक हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि हम दोनोंने क्षणभरके लिये भी राम-श्याममें भेद नहीं देखा। तो बहिन ! मेरी बात मान ! मैं मन्दभागिनी तो जा नहीं सकती, तू चली जा। राम-श्यामको देखकर तेरे प्राण शीतल हो जायँगे तथा पुत्रोंको देखकर यदि तेरे प्राण रह गये तो मैं भी जी जाऊँगी; क्योंकि तेरे-मेरे प्राण सर्वथा अभिन्न हैं। इसके सिवा मेरे प्राण बचानेका और कोई दूसरा उपाय मुझे नहीं दीखता।' वास्तवमें रोहिणीजी यही सोचकर मधुपुरी चली आयीं।

× × × ×

मधुपुरीसे जब वसुदेवजीको लेकर श्रीकृष्णचन्द्र द्वारका चले गये, तब रोहिणीजी भी द्वारका चली गयीं। उनके मनमें आनन्द तो यह रहता था कि वे निरन्तर राम-श्यामकी लीलाएँ देखती थीं, सुनती थीं; पर जब यशोदाका स्मरण होता, तब प्राणोंमें टीस चलने लगती, वे फुफकार मारकर रो उठतीं।

कुरुक्षेत्रमें रोहिणीजीका यशोदासे पुनः मिलन हुआ। यशोदाको कण्ठसे लगाकर, उनके अनन्त गुणोंको सबसे कह-कहकर न जाने वे कितनी देरतक रोती ही रहीं।

एक बार रोहिणीजी फिर व्रजपुरी पधारी थीं। दन्तवक्त्रका विनाश करके जब श्रीकृष्णचन्द्र व्रजपुर गये, तब उन्होंने रामके सहित रोहिणी मैयाको बुलाया। रोहिणी मैया अपने पुत्र बलरामके साथ आयीं।* तथा जब व्रजेश्वरी यशोदा एवं नन्द अन्तर्धान होने लगे, तब ये भी नित्य लीलाकी रोहिणीमें मिल गयीं। अवश्य ही जनसाधारणकी दृष्टिमें तो रोहिणीजी व्रजपुरसे लौट आयीं तथा श्रीकृष्णचन्द्रकी शेष लीलामें योगदान करती रहीं। जब यदुकुल ध्वंस हुआ और दारुक इस समाचारको लेकर द्वारका लौटे, तब वसुदेव-देवकीके

* रोहिणीजीके और भी बहुत-से पुत्र थे। उनके गर्भसे वसुदेवने बलराम, गद, सारण, दुर्मद विपुल, ध्रुव, और कृत आदि पुत्र उत्पन्न किये थे।

सहित रोहिणीजी चीत्कार करती हुई वहाँ गयीं, जहाँ यदुवंशियोंके मृत शरीर पड़े थे। वहाँ जब रामकृष्णको—अपने पुत्रोंको नहीं पाया, तब वे मूर्छित होकर गिर पड़ीं। रोहिणीजीकी यह मूर्च्छा फिर नहीं टूटी। रोहिणीजीके साथ ही वसुदेव—देवकीकी भी यही दशा हुई—

देवकी रोहिणी चैव वसुदेवस्तथा सुतौ।
कृष्णरामावपश्यन्तः शोकार्ता विजहुः स्मृतिम्।।
प्राणांश्च विजहुस्तत्र भगवद्विरहातुराः।

परिशिष्ट (१)

परम प्रेमस्वरूप सच्चिदानन्दघनविग्रह परात्पर भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर व्रजलीलामें लाखों–लाखों पुण्य–सौभाग्यमयी देवियाँ सम्मिलित थीं। उनमें नित्यसिद्धा गोपांगनाओंके अतिरिक्त पूर्वजन्मकी घोर तपस्या, प्रबल अनन्य आकांक्षा एवं विशुद्ध मधुरोपासनाके फलस्वरूप विभिन्न समूहोंमें विभिन्न नामोंसे विख्यात बहुत–सी व्रजांगनाएँ थीं। उनके समूहोंके निम्नलिखित दस वर्ग प्रधान हैं—श्रुतिरूपा, ऋषिरूपा, मैथिली, कौसली, अयोध्यापुरवासिनी, यज्ञसीता, पौलिन्दी, देवनारी, जालन्धरी और नागेन्द्रकन्या। इनके साथ भगवान् श्रीकृष्णके लीला–विहारका कुछ वर्णन गर्गसंहिता, माधुर्यखण्डमें प्राप्त होता है। व्रजलीलामें अष्टसखियाँ सबसे प्रधान मानी ही जाती हैं। पद्मपुराणादिमें सोलह आद्या सखियोंका वर्णन है, इनमें पहली आठके स्थान तथा सेवाकार्य नियत हैं। दोनोंके नाम ये हैं—

(१) ललिता, श्यामला, धन्या, श्रीहरिप्रिया, विशाखा, शैव्या, पद्मा और भद्रा।

(२) चन्द्रावली, चित्रलेखा, चन्द्रा, मदनसुन्दरी, श्रीकृष्णप्रिया, श्रीमधुमती, चन्द्ररेखा और हरिप्रिया। इनके अतिरिक्त ऐसी बहुत–सी सेवापरायणा गोपांगनाएँ भी हैं, जिन्होंने विभिन्न पुरुषरूपोंमें पूर्वजन्मोंमें श्रीकृष्णप्रेम–प्राप्तिके लिये दीर्घकालतक कठोर तपस्या की थी और उसके फलस्वरूप गोपीरूपमें अवतीर्ण होकर श्रीकृष्णप्रेम तथा भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर सेवाका सौभाग्य प्राप्त किया था। इनमें मुख्यतया चार ये हैं—

१. **सुनन्दा** — ये वीणा धारण करती हैं। इनके पिताका नाम सुनन्द गोप है। ये पूर्वजन्ममें उग्रतपा नामक ऋषि थीं और इन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके मधुर व्रजस्वरूपके ध्यानसहित घोर तपस्या की थी। उसीके फलस्वरूप इन्हें यह सौभाग्य मिला।

२. **भद्रा** — ये दिव्य व्यञ्जनके द्वारा सेवा करती हैं। इनके पिताका नाम सुभद्र गोप है। ये पूर्वजन्ममें सत्यतपा नामक ऋषि थीं और इन्होंने मधुरोपासनासहित श्रीकृष्णप्रेमप्राप्तिके लिये घोर तप किया था।

३. **रंगवेणी** — ये चित्रकलामें निपुण हैं और इस कलाके द्वारा सेवा करती

हैं। इनके पिताका नाम सारंग गोप है। इन्होंने हरिधामा नामक ऋषिके रूपमें पूर्वजन्ममें घोर तपस्यायुक्त मधुर भावसे भगवान् श्रीकृष्णकी दीर्घकालतक आराधना की थी।

४. चित्रगन्धा — ये अपने सहज दिव्य अंग–सौरभसे श्रीकृष्णको सुख पहुँचाती हैं। इनके पिताका नाम प्रचण्ड गोप हैं। ये पूर्वजन्ममें जाबालि नामक महान् ऋषि थीं। इन्होंने श्रीकृष्णप्रेमप्राप्तिके लिये तपस्या करती हुई स्वयं ब्रह्मविद्यासे मन्त्रदीक्षा प्राप्त करके मानसरोवरपर जाकर तदनुसार कठोर तपस्या और मधुरोपासना की थी।

वस्तुतः प्रियतम भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेमरूपा मधुरोपासनाका अधिकार उन्हींको प्राप्त होता है, जो उसे प्राप्त करनेके लिये निरभिमान होकर सहर्ष सर्वत्याग करते हैं एवं अपरिमित उल्लास तथा उत्साहके साथ दीर्घकालतक धैर्यके साथ महान्से महान् तप करनेके लिये सदा प्रस्तुत रहते हैं और तप करते हैं।

उन सभी महाभागा व्रजवनिताओंके श्रीचरणरजको अनन्त प्रणाम है, जिन्होंने यह सौभाग्य प्राप्त किया था।



परिशिष्ट (२)

श्रीराधा–कृष्ण–लीलाके परिकर

नम्र निवेदन

मोहका आवरण भंग हो जानेपर जगत्पिता ब्रह्माजी श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए कहते हैं—

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्।।

'ओहो! गोपराज श्रीनन्दके व्रजमें—उनकी छत्रछायामें रहनेवाले नर–नारियोंका कितना बड़ा भाग्य है कि स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण, जो परमानन्दके मूर्तिमान् विग्रह हैं और जो आदि–अन्तरहित साक्षात् पूर्णब्रह्म हैं, उनके सुहृद—आत्मीय हैं।'

तद्भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां
यद्गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम्।
यज्जीवितं तु निखिलं भगवान्मुकुन्द–
स्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव।।

'प्रभो! इस व्रजभूमिमें किसी वनमें, विशेष करके गोकुलमें, किसी भी योनिमें जन्म हो जाय, यही हमारे लिये बड़े सौभाग्यकी बात होगी; क्योंकि यहाँ जन्म हो जानेपर आपके किसी–न–किसी प्रेमीकी चरण–धूलि हमारे

मस्तकपर पड़ ही जायेगी, वह हमें नहला देगी, प्रभो ! आपके प्रेमी व्रजवासियोंका सम्पूर्ण जीवन आपका ही जीवन है, आप ही उनके जीवनके एकमात्र सर्वस्व हैं। ऐसी दशामें उनकी चरण–धूलि आपकी ही चरण–धूलि है। आपकी चरण–धूलि तो इतनी दुर्लभ है कि उसे श्रुतियाँ भी अनादिकालसे अबतक ढूँढ़ ही रही हैं, पा नहीं सकी हैं।'

जिन व्रजवासियोंकी—नहीं, नहीं, उनकी चरण–रजकी इतनी महिमा है, उनके सम्बन्धमें जिज्ञासा होना प्रत्येक राधाकृष्णके उपासकके लिये स्वाभाविक ही नहीं, अपितु अनिवार्य है। उनके माता–पिता कौन थे, किस पुनीत वंशको उन्होंने अपने आविर्भावसे उजागर किया था, इनके मातृकुलके और पितृकुलके पूर्व–पुरुष कौन थे, इनके मुख्य सम्बन्धी कौन–कौन थे, श्रीकृष्णके मुख्य सखा तथा श्रीराधारानीकी प्रधान सखियाँ कौन थीं, जिनका उनके साथ समताका अतिशय स्नेहपूर्ण एवं अन्तरंग सम्बन्ध था, उनकी सुर–मुनि–वाञ्छित विविध प्रकारकी सेवामें अहर्निश नियुक्त रहनेवाले उनके भृत्य एवं परिचारिकाएँ कौन थीं, अपने स्वरूपभूत कर–चरणादि चिदानन्दमय श्रीअंगोंमें वे कौन–कौनसे आभूषण आदि धारण करते थे, कौन–कौन–से स्थान उन्हें प्रिय थे तथा उनके प्रीतिपात्र पशु–पक्षियोंके क्या नाम थे—इत्यादि प्रश्नोंका यथार्थ उत्तर पानेके लिये किस व्रज–रस–रसिकका मन लालायित न होगा ?

भक्तोंकी इसी ममतापूर्ण जिज्ञासाका समाधान प्रस्तुत करनेके पावन उद्देश्यसे ही यह अत्यन्त संक्षिप्त किंतु प्रामाणिक सामग्री एकत्र की गयी है। प्रत्यक्षदर्शी महात्माओंने प्राचीन ग्रन्थों तथा अपने निजी अनुभवोंके आधारपर इस विषयपर कुछ ग्रन्थ भी लिखे हैं। गौड़ीय वैष्णवोंके जीवन–सर्वस्व कलि–पावनावतार प्रेममूर्ति महाप्रभु श्रीगौरांगदेवके प्रमुख एवं अतिशय प्रीतिपात्र शिष्य सुगृहीत नामधेय श्रीरूपगोस्वामीका 'श्रीराधाकृष्णगणोद्देश दीपिका' के नामसे एक अत्यन्त प्रामाणिक ग्रन्थ उपलब्ध है। मुख्यतया उसीके आधारपर तथा कतिपय अन्य सूत्रोंसे भी इस सामग्रीका संकलन किया गया है। इससे यदि व्रज–प्रेमियोंका कुछ भी उपकार हुआ तो हम अपना प्रयास सफल समझेंगे। संकलनमें प्रमाद अथवा दृष्टि–दोषवश यदि भूलें रह गयी हों, तो विद्वज्जनोंसे निवेदन है कि उन्हें बतानेकी कृपा करें। हम उन्हें अगले संस्करणमें सुधारनेका प्रयत्न करेंगे। श्रीराधाकृष्णार्पणमस्तु।

गीतावाटिका, गोरखपुर
श्रीराधाष्टमी
वि० सं० २०२१

वैष्णवोंकी चरण–रज
चिम्मनलाल गोस्वामी



श्रीकृष्ण–परिकर–परिचय

पितामह—पर्जन्य

पितामही—वरीयसी

मातामह—सुमुख

मातामही—पाटला

ताऊ—उपनन्द एवं अभिनन्द

ताई—तुंगी (उपनन्दकी पत्नी), पीवरी (अभिनन्दकी पत्नी)

चाचा—सन्नन्द (सुनन्द) एवं नन्दन

चाची—कुवलया (सन्नन्दकी पत्नी), अतुल्या (नन्दनकी पत्नी)

फूफा—नील एवं काम

बुआ—सुनन्दा (महानीलकी पत्नी), नन्दिनी (सुनीलकी पत्नी)

पिता—महाराज नन्द

बड़ी माता—महारानी रोहिणी (वसुदेवकी पत्नी एवं बलरामजीकी जननी)

माता—महारानी यशोदा

मामा—यशोवर्धन, यशोधर, यशोदेव, सुदेव

मौसा—मल्ल (पत्नी–यशस्विनी)(एक मतसे मौसाका नाम भी नन्द है)

मौसी—यशोदवी (दधिसारा), यशस्विनी (हविस्सारा)।

पितामहके समान पूज्य गोप—गोष्ठ, कल्लोल, करुण्ड, तुण्ड, कुटेर, पुरट आदि।

पितामहीके समान पूजनीया वृद्धा गोपियाँ—शिलाभेरी, शिखाम्बरा, भारुणी, भंगुरा, भंगी, भारशाखा, शिखा आदि।

पिताके समकक्ष गोप—कपिल, मंगल, पिंगल, पिंग, माठर, पीठ, पट्टिश, शंकर, संगर, भृंग, घृणि, घाटिक, सारघ, पटीर, दण्डी, केदार, सौरभेय, कलाकुंर, धुरीण, धुर्व्व, चक्रांग, मस्कर, उत्पल, कम्बल, सुपक्ष, सौधहारीत, हरिकेश, हर, उपानन्द आदि।

माताके समान पूजनीया गोपांगनागण—वत्सला, कुशला, ताली, मेदुरा, मसृणा, कृपा, शंकिनी, बिम्बिनी, मित्रा, सुभगा, भोगिनी, प्रभा, शारिका, हिंगुला, नीति, कपिला, धमनीधरा, पक्षति, पाटका, पुण्डी, सुतुण्डा, तुष्टि, अञ्जना, तरंगाक्षी, तरलिका, शुभदा, मालिका, अंगदा, वत्सला, कुशला, ताली, मेदुरा, विशाला, शल्लकी, वेणा, वर्तिका आदि।

इनके घर प्राय: आने–जानेवाली ब्राह्मणस्त्रियाँ—सुलता, गौतमी, यामी, चण्डिका आदि

मातामहके तुल्य पूज्य गोप—किल, अन्तकेल, तीलाट, कृपीट, पुरट, गोण्ड, कल्लोट्ट, कारण्ड, तरीषण, वरीषण, वीरारोह, वरारोह आदि।

मातामहीके तुल्य पूजनीया—भारुण्डा, जटिला, भेला, कराला, करवालिका, घर्घरा, मुखरा, घोरा, घण्टा, घोणी, सुघण्टिका, ध्वांक्षरुण्टी हण्डि, टुण्डि, डिण्डिमा, मञ्जुवाणिका, चक्कि, चोण्डिका, चुण्डी, पुण्डवाणिका, डामणी, डामरी, डुम्बी, डंका आदि।

स्तन्यपान करानेवाली धात्रियाँ—अम्बिका तथा किलिम्बा (अम्बा) धनिष्ठा आदि।

अग्रज (बड़े भ्राता)—बलराम (रोहिणीजीके पुत्र)

ताऊके सम्बन्धसे तथा चचेरे बड़े भाई—सुभद्र, मण्डल, दण्डी, कुण्डली, भद्रकृष्ण, स्तोककृष्ण, सुबल, सुबाहु आदि।

ताऊ, चाचाके सम्बन्धसे बहनें—नन्दिरा, मन्दिरा, नन्दी, नन्दा, श्यामदेवी आदि।

सखा—श्रीकृष्णके चार प्रकारके सखा हैं—(१) सुहृद, (२) सखा, (३) प्रियसखा, (४) प्रिय नर्मसखा

(१) सुहृद्वर्गके सखा—सुहृदवर्गमें जो गोपसखा हैं, वे आयुमें श्रीकृष्णकी अपेक्षा बड़े हैं। वे सदा साथ रहकर इनकी रक्षा करते हैं। ये सुभद्र, भद्रवर्धन, मण्डलीभद्र, कुलवीर, महाभीम, दिव्यशक्ति, गोभट, सुरप्रभ, रणस्थिर आदि हैं। इन सबके अध्यक्ष अम्बिकापुत्र विजयाक्ष हैं।

(२) सखावर्गके सखा—सखावर्गके कुछ सखा तो श्रीकृष्णचन्द्रके समान आयुके हैं तथा कुछ श्रीकृष्णसे छोटे हैं। ये सखा भाँति-भाँतिसे श्रीकृष्णकी आग्रहपूर्वक सेवा करते हैं और सदा सावधान रहते हैं कि कोई शत्रु नन्दनन्दनपर आक्रमण न कर दे।

समान आयुके सखा हैं—विशाल, वृषभ, ओजस्वी, जम्बि, देवप्रस्थ, वरूथप, मन्दार, कुसुमापीड़, मणिबन्ध आदि तथा श्रीकृष्णसे छोटी आयुके सखा हैं—मन्दार, चन्दन, कुन्द, कलिन्द, कुलिक आदि।

(३) प्रियसखावर्गके सखा—श्रीदाम, दाम, सुदामा, वसुदाम, किंकिणी, भद्रसेन, अंशुमान्, स्तोककृष्ण (श्रीकृष्णके चाचा नन्दनके पुत्र) पुण्डरीकाक्ष, विटंगाक्ष, विलासी, कलविंक, प्रियंकर आदि हैं। ये प्रिय सखा विविध क्रीड़ाओंसे, परस्पर कुश्ती लड़कर, लाठीके खेल खेलकर, युद्ध-अभिनयकी रचना कर-कर तथा अन्य अनेकों प्रकारसे श्रीकृष्णचन्द्रका आनन्दवर्द्धन करते हैं। ये सब शान्त प्रकृतिके हैं तथा श्रीकृष्णके परम प्राणरूप हैं। ये सब समान वय और रूपवाले हैं। इन सबमें मुख्य हैं—श्रीदाम। ये पीठमर्दक (प्रधान नायकके सहायक) सखा हैं। इन्हें श्रीकृष्ण अत्यन्त प्यार करते हैं। प्रायः देखा जाता है कि श्रीकृष्ण जो भी भोजन करते हैं, उसमेंसे प्रथम ग्रासका आधा भाग स्तोककृष्णके मुखमें पहले देते हैं एवं फिर शेष अपने मुँहमें डाल लेते हैं। स्तोककृष्ण देखनेमें श्रीकृष्णकी प्रतिमूर्ति हैं। वे इसे प्यार भी बहुत करते हैं। भद्रसेन समस्त सखाओंके सेनापति हैं।

(४) प्रिय नर्मसखावर्गके सखा—सुबल, (श्रीकृष्णके चाचा सन्नन्दके

पुत्र), अर्जुन, गन्धर्व, बसन्त, उज्ज्वल, कोकिल, सनन्दन, विदग्ध आदि हैं। श्रीकृष्णका ऐसा कोई रहस्य नहीं है, जो इनसे छिपा हो।

विदूषक सखा—मधुमंगल, पुष्पांक, हासांक, हंस आदि श्रीकृष्णके विदूषक सखा हैं।

विट—कडार, भारतीबन्धु, गन्ध, वेद, वेध आदि श्रीकृष्णके विट (प्रणयमें सहायक सेवक) हैं।

आयुध धारण करानेवाले सेवक—रक्तक, पत्रक, पत्री, मधुकण्ठ, मधुव्रत, शालिक, तालिक, माली, मान, मालाधर, आदि श्रीकृष्णके वेणु, श्रृंग, मुरली, यष्टि, पाश आदिकी रचना करनेवाले एवं इन्हें धारण करानेवाले तथा श्रृंगारोचित विविध वनधातु जुटानेवाले दास हैं।

वेश–विन्यासकी सेवा—प्रेमकंद, महागन्ध, दय, मकरन्द प्रभृति श्रीकृष्णको नाना वेशोंमें सजानेकी अन्तरंग सेवामें नियुक्त हैं। ये पुष्परससार (इत्र) से श्रीकृष्णके वस्त्रोंको सुरभित रखते हैं। इनकी सैरन्ध्री (केश सँवारनेवालीका) नाम है—मधुकन्दला।

वस्त्र–संस्कार सेवा—सारंग, बकुल आदि श्रीकृष्णके वस्त्र–संस्कारकी सेवामें नियुक्त रजक हैं।

अंगराग तथा पुष्पालंकरणकी सेवा—सुमना, कुसुमोल्लास, पुष्पहास, हर आदि तथा सुबन्ध, सुगन्ध, आदि श्रीकृष्णचन्द्रकी गन्ध, अंगराग, पुष्पाभरण आदिकी सेवा करते रहते हैं।

भोजन–पात्र, आसनादिकी सेवा—विमल, कमल आदि श्रीकृष्णके भोजनपात्र आसन (पीढ़ा) आदिकी सँभाल रखनेवाले परिचारक हैं।

जलकी सेवा—पयोद तथा वारिद आदि श्रीकृष्णचन्द्रके यहाँ जल छाननेकी सेवामें निरत रहते हैं।

ताम्बूलकी सेवा—श्रीकृष्णचन्द्रके लिये सुरभित ताम्बूलकी बीड़ी सजानेवाले हैं—सुविलास, विशालाक्ष, रसाल, जम्बुल, रसशाली, पल्लव, मंगल, फुल्ल, कोमल, कपिल आदि। ये ताम्बूलकी बीड़ी बाँधनेमें अत्यन्त निपुण हैं। ये सब श्रीकृष्णके पास रहनेवाले विविध विचित्र चेष्टा करके, नाच कूदकर, मीठी चर्चा सुनाकर मनोरञ्जन करनेवाले सखा हैं।

चेट—भंगुर, भृगांर, सान्धिक, ग्रहिल आदि श्रीकृष्णके चेट (नियत काम करनेवाले सेवक) हैं।

चेटी—कुरंगी, भृंगारी, सुलम्बा, लम्बिका आदि श्रीकृष्णकी चेटियाँ हैं।

प्रमुख परिचारिकाएँ—नन्द–भवनकी प्रमुख परिचारिकाएँ हैं—धनिष्ठा, चन्दनकला, गुणमाला, रतिप्रभा, तड़ित्प्रभा, तरुणी, इन्दुप्रभा, शोभा, रम्भा आदि। धनिष्ठा तो श्रीकृष्णचन्द्रकी धात्री तथा व्रजरानीकी अत्यन्त विश्वासपात्री भी हैं। उपर्युक्त सभी पानी छिड़कने, गोबरसे आँगन आदि लीपने, दूध औटाने आदि अन्तःपुरके कार्योंमें अत्यन्त कुशला हैं।

चर—चतुर, चारण, धीमान्, पेशल आदि इनके उत्तम चर हैं। ये नानावेश बनाकर गोप–गोपियोंमें विचरण करते रहते हैं।

दूत—केलि तथा विवादमें कुशल विशारद, तुंग, वावदूक, मनोरम, नीतिसार आदि इनके कुञ्ज–सम्मेलनके उपयोगी दूत हैं।

दूतिकाएँ—पौर्णमासी, वीरा, वृन्दा, वंशी, नान्दीमुखी, वृन्दारिका, मेना, सुबला तथा मुरली प्रभृति इनकी दूतिकाएँ हैं। ये सब–की–सब कुशला, प्रिया–प्रियतमका सम्मिलन करानेमें दक्षा तथा कुञ्जादिको स्वच्छ रखने आदिमें निपुणा हैं। ये वृक्षायुर्वेदका ज्ञान रखती हैं तथा प्रिया–प्रियतमके स्नेहसे पूर्ण हैं। इनमें वृन्दा सर्वश्रेष्ठ हैं। वृन्दा तपाये हुए सोनेकी कान्तिके समान परम मनोहरा हैं। नील वस्त्रका परिधान धारण करती हैं तथा मुक्ताहार एवं पुष्पोंसे सुसज्जित रहती हैं। ये सदा वृन्दावनमें निवास करती हैं, प्रिया–प्रियतमका सम्मिलन चाहनेवाली हैं तथा उनके प्रेमसे परिप्लुता हैं।

वंदीगण—नन्द–दरबार दो वन्दीगण सुविचित्र–रव और मधुर–रव श्रीकृष्णको अत्यन्त प्रिय हैं।

नर्तक—(नन्द–सभाके) इनके प्रिय नर्तक हैं—चन्द्रहास, इन्दुहास, चन्द्रमुख आदि।

(क) नट (अभिनय करनेवाले)—इनके प्रिय नट हैं—सारंग, रसद, विलास आदि।

गायक—इनके प्रिय गायक हैं—सुकण्ठ, सुधाकण्ठ आदि

रसज्ञ तालधारी—भारत, सारद, विद्याविलास, सरस आदि सर्व प्रकारकी व्यवस्थामें निपुण इनके तालधारी समाजीगण हैं।

मृदंग–वादक—सुधाकर, सुधानाद एवं सानन्द—ये इनके गुणी मृदंग–वादक हैं।

गृहनापित—क्षौरकर्म, तैल–मर्दन, पाद–संवाहन, दर्पणकी सेवा आदि

कार्यमें नियुक्त हैं—दक्ष, सुरंग, भद्रांग, स्वच्छ, सुशील एवं प्रगुण नामक गृहनापित।

सौचिक (दर्जी)—इनके कुलके निपुण दर्जीका नाम है रौचिक।

रजक (धोबी)—सुमुख, दुर्लभ, रञ्जन आदि इनके परिवारके धोबी हैं।

हड्डिप (मेहतर)—पुण्यपुञ्ज तथा भाग्यराशि इनके परिवारके भंगी हैं।

स्वर्णकार (सुनार)—इनके तथा इनके परिवारके लिये विविध अलंकार-आभूषण आदि बनानेवाले रंगण तथा रंकण नामक दो सुनार हैं।

कुम्भकार (कुम्हार)—पवन तथा कर्मठ नामसे इनके दो कुम्हार हैं, जो इनके परिवारके लिये प्रयुक्त होनेवाले कलश, गागर, दधि-भाण्डादि बनाते हैं।

काष्ठशिल्पी (बढ़ई)—वर्द्धकि तथा वर्द्धमान नामके इनके दो कुल-बढ़ई हैं, जो इनके लिये शकट, खाट आदि लकड़ीकी चीजोंका निर्माण करते हैं।

अन्य निजी शिल्पी एवं कारुगण—कारव, कुण्ड, कण्ठोल, करण्ड, कटुल आदि ऐसे घरेलू शिल्पी कारुगण हैं,जो इनके गृहमें काम आनेवाली जेवड़ी, मथनिया, कुठार, पेटी आदि सामान बनाते रहते हैं।

चित्रकार—सुचित्र एवं विचित्र नामके दो पटु चित्र-शिल्पी इनके प्रिय पात्र हैं।

गाय—इनकी प्रिय गायोंके नाम हैं—मंगला, पिंगेक्षणा, गंगा, पिशंगी प्रपात-शृंगी, मृदंगमुखी, धूमला, शबला, मणिकस्तनी, हंसी, वंशी-प्रिया आदि।

बलीवर्द—पद्मगन्ध तथा पिशंगाक्ष आदि इनके प्रिय बैल हैं।

हरिण (मृग)—इनके प्रिय मृगका नाम है सुरंग।

मर्कट—इनका एक प्रिय बंदर भी है, उसका नाम दधिलोभ।

श्वान—व्याघ्र और भ्रमरक नामके दो कुत्ते भी श्रीकृष्णको बहुत प्रिय हैं।

हंस—इनके पास एक अत्यन्त सुमनोहर हंस भी है जिसका नाम है कलस्वन।

मयूर—इनके प्रिय मयूरोंका नाम है शिखी और ताण्डविक।

तोते—इनके दक्ष और विचक्षण नामके दो प्रिय तोते हैं।

महोद्यान—साक्षात् कल्याणरूप श्रीवृन्दावन ही इनका परम मांगलिक महोद्यान है।

क्रीडापर्वत—श्रीगोवर्धन पर्वत इनकी रमणीय क्रीड़ास्थली है।

घाट—इनका प्रिय घाट नीलमण्डपिका नामसे विख्यात है। मानसगंगाका पारंग घाट भी इन्हें अतिशय प्रिय है। इस घाटपर सुविलसतरा नामकी एक नौका श्रीकृष्णचन्द्रके लिये सदा प्रस्तुत रहती है।

निभृत गुहा—'मणिकन्दली' नामक कन्दरा इन्हें अत्यन्त प्रिय है।

मण्डप—शुभ्र, उज्ज्वल शिलाखण्डोंसे जटित एवं विविध सुगन्धित द्रव्योंसे सुवासित 'आमोदवर्द्धन' नामका इनका निज मण्डप है।

सरोवर—इनके निज सरोवरका नाम 'पावन सरोवर' है, जिसके किनारे इनके अनेक क्रीड़ाकुञ्ज शोभायमान हैं।

कुञ्ज—इनके प्रियकुञ्जका नाम काममहातीर्थ है।

लीलापुलिन—इनके लीलापुलिनका नाम 'अनंग–रंगभूमि' है।

निज–मन्दिर—नन्दीश्वर पर्वतपर स्फुरदिन्दिर नामक इनका निज मन्दिर है।

दर्पण—इनके दर्पणका नाम शरदिन्दु है।

पंखा—इनके पंखेको मधुमारुत कहा जाता है।

लीला–कमल तथा गेंद—इनके पवित्र लीला–कमलका नाम सदास्मेर है एवं गेंदका नाम चित्रकोरक है।

धनुष–बाण—'विलासकार्म्मण' नामक स्वर्णसे मण्डित इनका धनुष है तथा इनके मनोहर बाणका नाम शिञ्जिनी है, जिसके दोनों ओर मणियाँ बँधी हुई हैं।

श्रृंग—इनके प्रिय श्रृंग (विषाण) का नाम मञ्जुघोष है।

वंशी—इनकी वंशीका नाम भुवन मोहिनी है। यह महानन्दा नामसे भी विख्यात है। *

---

* इस सम्बन्धमें यह जाननेयोग्य है कि वंशी यदि अष्टछिद्र–समन्वित हो एवं एक अंगुलके अंतरसे एक अंगुल परिमाणका मुखरन्ध्र हो एवं शिरोभाग चार अंगुल तथा पुच्छभाग तीन अंगुल परिमाणका हो, तो उसे 'वंशिका' कहते हैं।

यही वंशी यदि नवछिद्र–समन्वित हो, सत्रह अंगुल लंबी हो तथा छिद्रों एवं मुखरन्ध्रके बीच दस अंगुलका व्यवधान हो, तो उस सम्मोहिनी वंशी (महानन्दा) कहते हैं।

यदि छिद्रों एवं मुखरन्ध्रके बीच बारह अंगुलका व्यवधान हो, तो उसे 'आकर्षिणी' कहते हैं। उपर्युक्त दोनों सुवर्णकी बनी होती है। रासके समय श्रीकृष्ण महानन्दा धारण करते हैं।

यदि चौदह अंगुलका व्यवधान हो तो उसे 'आनन्दिनी (बाँसुरी)' कहते हैं। यह श्रीकृष्ण तथा उनके सखाओंको अत्यन्त प्रिय है। आनन्दिनी बाँसकी बनी होती है तथा श्रीकृष्ण इसे विविध लीला प्रसंगोंमें धारण करते हैं। वंशिका मणिमयी (हीरक–पद्मरागादि मणियोंसे जटित) होती है; महानन्दा, सम्मोहिनी एवं आकर्षिणी स्वर्णनिर्मित होती हैं। गोचारणके समय आनन्दिनीको एवं रासके समय श्यामसुन्दर महानन्दाको धारण करते हैं।

वेणु——छः रन्ध्रोंवाले इनके सुन्दर वेणुका नाम 'मदन–झंकार' है।

मुरली——कोकिलाओंके हृदयाकर्षक कूजनको भी फीका करनेवाली इनकी मधुर मुरलिकाका नाम 'सरला' है।

वीणा——इनकी 'वीणा' तरंगिणी नामसे विख्यात है।

राग——गौड़ी तथा गुर्जरी नामकी रागिनियाँ श्रीकृष्णको अतिशय प्रिय हैं।

दण्ड (वेत्र या यष्टिक)——इनकी बेंत (वेत्र या छड़ी) का नाम 'मण्डन' है।

दोहनी——इनकी दोहनीका नाम 'अमृत–दोहनी' है।

आभूषण——श्रीकृष्णचन्द्रके नित्य–प्रयोगमें आनेवाले आभूषणोंमेंसे कुछके नाम निम्न हैं——

(१) नौ रत्नोंसे जटित 'महारक्षा' नामक रक्षायन्त्र इनकी भुजामें बँधा रहता है।

(२) कंकण——चंकन

(३) मुद्रिका——रत्नमुखी

(४) पीताम्बर——निगमशोभन

(५) किंकिणी——कलझंकारा

(६) मञ्जीर——हंसगञ्जन

(७) हार——तारावली

(८) मणिमाला——तड़ित्प्रभा

(९) पदक——हृदयमोहन (इसपर श्रीराधाकी छवि अंकित है)

(१०) मणि——कौस्तुभ

(११) कुण्डल——रत्यधिदेव और रागाधिदेव (मकराकृत)

(१२) किरीट——रत्नपार

(१३) चूड़ा——चामरडामरी

(१४) मयूरमुकुट——नवरत्न विडम्ब

(१५) गुञ्जाली——रागवल्ली

(१६) माला——दृष्टिमोहिनी

(१७) तिलक——दृष्टिमोहन

चरणोंमें चिह्न हैं—

दाहिना चरण वामचरण



दहिना चरण—

अँगूठेके बीच जौ, उसके बगलमें ऊर्ध्वरेखा, मध्यमा उँगलीके नीचे कमल, कनिष्ठिकाके नीचे अंकुश, जौके नीचे चक्र, चक्रके नीचे छत्र, कमलके नीचे ध्वजा, अंकुशके नीचे वज्र, एड़ीके मध्यभागमें अष्टकोण, उसकी चारों दिशाओंमें चार सथिये (स्वस्तिक) और उनके बीचमें चारों कोनोंमें चार जामुनके फल—इस प्रकार कुल ग्यारह चिह्न हैं।

बायां चरण—

अँगूठेके नीचे शंख, उसके बगलमें मध्यमा उँगलीके नीचे दो घेरोंका दूसरा शंख, उन दोनोंके नीचे चरणके दोनों पार्श्वोंको छूता हुआ बिना डोरीका धनुष, धनुषके नीचे तलवेके ठीक मध्यमें गायका खुर, खुरके नीचे त्रिकोण, त्रिकोणके नीचे अर्धचन्द्र (जिसका मुख ऊपरकी ओर है), एड़ीमें मत्स्य तथा खुर एवं मत्स्यके बीच चार कलश (जिनमेंसे दो त्रिकोणके आसपास और दो चन्द्रमाके नीचे अगल–बगलमें स्थित हैं)—इस प्रकार कुल ८ चिह्न हैं।



श्रीराधा-परिकर-परिचय

पितामह—महीभानु
पितामही—सुखदा (अन्यत्र 'सुषमा' नामका भी उल्लेख मिलता है)
पिता—वृषभानु
माता—कीर्तिदा
पितृव्य (चाचा)—भानु, रत्नभानु एवं सुभानु
फूफा—काश
बुआ—भानुमुद्रा
भ्राता—श्रीदाम
कनिष्ठा भगिनी—अनंगमञ्जरी
मातामह—इन्दु
मातामही—मुखरा
मामा—भद्रकीर्ति, महाकीर्ति, चन्द्रकीर्ति
मामी—मेनका, षष्ठी, गौरी
मौसा—कुश
मौसी—कीर्तिमती

धात्री—धातकी

सखियाँ—श्रीराधाजीकी पाँच प्रकारकी सखियाँ हैं—(१) सखी, (२) नित्यसखी, (३) प्राणसखी, (४) प्रियसखी, (५) परम प्रेष्ठसखी।

(१) सखीवर्गकी सखियाँ—कुसुमिका, विन्ध्या, धनिष्ठा आदि हैं।

(२) नित्यसखीवर्गकी सखियाँ—कस्तूरी, मनोज्ञा, मणिमञ्जरी, सिन्दूरा, चन्दनवती, कौमुदी, मदिरा आदि हैं।

(३) प्राणसखीवर्गकी सखियाँ—शशिमुखी, चन्द्ररेखा, प्रियंवदा, मदोन्मदा, मधुमती, वासन्ती, लासिका, कलभाषिणी, रत्नवर्णा, केलिकन्दली, कादम्बरी, मणिमती, कर्पूरतिलका आदि हैं। ये सखियाँ प्रेम, सौन्दर्य एवं सद्गुणोंमें प्रायः श्रीराधारानीके समान ही हैं।

(४) प्रियसखीवर्गकी सखियाँ—कुरंगाक्षी, मण्डली, मणिकुण्डला, मालती, चन्द्रतिलका, माधवी, मदनालसा, मञ्जुकेशी, मञ्जुमेधा, शशिकला, सुमध्या, मधुरेक्षणा, कमला, कामलतिका, चन्द्रलतिका, गुणचूड़ा, वरांगदा, माधुरी, चन्द्रिका, प्रेममञ्जरी, तनुमध्यमा, कदर्पसुन्दरी आदि कोटि–कोटि प्रिय सखियाँ श्रीराधारानीकी हैं।

(५) परमप्रेष्ठसखीवर्गकी सखियाँ—इस वर्गकी सखियाँ हैं—(१) ललिता (२) विशाखा (३) चित्रा (४) इन्दुलेखा (५) चम्पकलता (६) रंगदेवी (७) तुंगविद्या (८) सुदेवी

सुहृद्वर्गकी सखियाँ—श्यामला, मंगला आदि।

प्रतिपक्षवर्गकी सखियाँ—चन्द्रावली आदि।

वाद्य एवं संगीतमें निपुणा सखियाँ—कलाकण्ठी, सुकण्ठी एवं प्रियपिक–कण्ठिका नाम्नी सखियाँ वाद्य एवं कण्ठसंगीतकी कलामें अत्यधिक निपुणा हैं। विशाखा सखी अत्यन्त मधुर कोमल पदोंकी रचना करती है तथा ये तीनों सखियाँ गा–गाकर प्रिया–प्रियतमको सुख–प्रदान करती हैं। ये सब शुषिर, तत, आनद्ध, घन तथा अन्य वाद्य–यन्त्रोंको बजाती हैं।

मानलीलामें संधि करानेवाली सखियाँ—नान्दीमुखी एवं बिन्दुमुखी

वनवासिनी सखियाँ—मल्ली, भृंगी तथा मतल्ली नामकी पुलिन्द–कन्यकाएँ श्रीराधारानीकी वनवासिनी सखियाँ हैं।

चित्र बनानेवाली सखियाँ—श्रीराधारानीके लिये भाँति–भाँतिके चित्र बनाकर प्रस्तुत करनेवाली सखीका नाम चित्रिणी है।

कलाकार सखियाँ—रसोल्लासा, गुणतुंगा, स्मरोद्धुरा आदि श्रीराधारानीकी कला–मर्मज्ञ सखियाँ हैं।

वनादिकोंमें साथ जानेवाली सखियाँ—वृन्दा, कुन्दलता आदि सहचरियाँ श्रीराधाके साथ वनादिकोंमें आती–जाती हैं।

व्रजराजके घरपर रहनेवाली सखियाँ—श्रीराधारानीकी अत्यन्त प्रियपात्री धनिष्ठा, गुणमाला आदि सखियाँ हैं, जो व्रजराजके घरपर ही रहती हैं।

मञ्जरियाँ—अनंगमञ्जरी, रूपमञ्जरी, रतिमञ्जरी, लवंगमञ्जरी, रागमञ्जरी, रसमञ्जरी, विलासमञ्जरी, प्रेममञ्जरी, मणिमञ्जरी, सुवर्णमञ्जरी, काममञ्जरी, रत्नमञ्जरी, कस्तूरीमञ्जरी, गन्धमञ्जरी, नेत्रमञ्जरी, पद्ममञ्जरी, लीलामञ्जरी, हेममञ्जरी आदि श्रीराधारानीकी मञ्जरियाँ हैं। इनमें रतिमञ्जरी श्रीराधाजीको अत्यन्त प्रिय हैं तथा वे रूपमें भी इनके ही समान हैं।

धात्रीपुत्री—कामदा है। यह श्रीराधारानीके प्रति सखीभावसे युक्ता है।

सदा साथ रहनेवाली बालिकाएँ—तुंगी, पिशंगी, कलकन्दला, मञ्जुला, बिन्दुला, संधा, मृदुला आदि बालिकाएँ सदा–सर्वदा इनके साथ रहती हैं।

मन्त्र–तन्त्र–परामर्शदात्री सखियाँ—श्रीराधारानीको यन्त्र–मन्त्र–तन्त्र क्रियाके सम्बन्धमें परामर्श देनेवाली सखियोंका नाम है दैवज्ञा एवं दैवतारिणी।

राधाके घर आने–जानेवाली ब्राह्मण स्त्रियाँ—गार्गी आदि

वृद्धादूती—कात्यायनी आदि

मुख्यदूती—महीसूर्या

चेटीगण—(बँधा काम करनेवाली दासिकाएँ)—भृंगारिका आदि

मालाकार–कन्याएँ—माणिकी, नर्मदा एवं प्रेमवती, नामकी मालाकार कन्याएँ श्रीराधारानीकी सेवामें नियुक्त रहती हैं। ये सुन्दर, सुरभित कुसुमों एवं पद्मोंका संचयन करके प्रतिदिन प्रातःकाल श्रीराधारानीको भेंट करती हैं। श्रीराधारानी प्रायः इन्हें हृदयसे लगाकर इनकी भेंट स्वीकार करती हैं।

सैरन्ध्री—पालिन्द्री

दासीगण—रागलेखा, कलाकेलि, मञ्जुला, भूरिदा आदि इनकी दासियाँ हैं।

गृह–नापित–कन्याएँ—श्रीराधारानीके उबटन (अंगराग), अलक्तकदान एवं केश–विन्यासकी सेवा सुगन्धा एवं नलिनी नामकी दो नापित–कन्याएँ करती हैं। ये दोनों ही श्रीराधारानीको अतिशय प्यारी हैं।

गृह–रजक–कन्याएँ—मञ्जिष्ठा एवं रंगरागा श्रीराधारानीके वस्त्र प्रक्षालन करती हैं। इन्हें श्रीराधारानी अत्यधिक प्यार करती हैं।

हड्डिप–कन्याएँ—भाग्यवती एवं पुण्य–पुञ्जा श्रीराधारानीके घरकी मेहतर–कन्याएँ हैं।

विटगण—सुबल, उज्ज्वल, गन्धर्व, मधुमंगल, रक्तक, विजय, रसाल, पयोद, आदि इनके विट (श्रीकृष्णसे मिलन करानेमें सहायक) हैं।

कुल–उपास्यदेव—भगवान् श्रीसूर्यदेव श्रीराधारानीके कुल–उपास्य देवता हैं।

गायें—सुनन्दा, यमुना, बहुला आदि इनकी प्रिय गायें हैं।

गोवत्सा—तुंगी नामकी गोवत्सा इन्हें अत्यन्त प्रिय है।

हरिणी—रंगिणी

चकोरी—चारुचन्द्रिका

हंसिनी—तुण्डीकेरी (यह श्रीराधाकुण्डमें सदा विचरण करती रहती है)

सारिक—सूक्ष्मधी और शुभा—ये इनकी प्रिय सारिकाएँ हैं।

मयूरी—तुण्डिका

वृद्धा मर्कटी—कक्खटी

आभूषण—श्रीराधारानीके निम्न आभूषणोंका उल्लेख मिलता है। इनके अतिरिक्त भी अनेक भाँति–भाँतिके आभूषण उनके प्रयोगमें आते हैं—

तिलक—स्मरयन्त्र

हार—हरिमनोहर

रत्नताटंक जोड़ी—रोचन

घ्राणमुक्ता (बुलाक)—प्रभाकरी

पदक—मदन (इसके भीतर वे श्रीकृष्णकी प्रतिच्छवि छिपाये रहती हैं)

कटक (कड़ूला) जोड़ा—चटकाराव

केयूर (बाजूबंद) जोड़ा—मणिकर्बुर

मुद्रिका—विपक्षमर्दिनी (इसपर श्रीराधाका नाम उत्कीर्ण है)

करधनी (काञ्ची)—काञ्चनचित्रांगी

नूपुर जोड़ी—रत्नगोपुर : इनकी शब्द–मञ्जरीसे श्रीकृष्ण व्यामोहितसे हो जाते हैं।

मणि—सौभाग्यमणि—यह मणि शंखचूडके मस्तकसे छीनी गयी थी। इसका दूसरा नाम स्यमन्तकमणि भी है। यह एक साथ ही सूर्य एवं चन्द्रमाके समान् कान्तियुक्त है।

वस्त्र—मेघाम्बर तथा कुरुविन्दनिभ नामके दो वस्त्र इन्हें अत्यन्त

प्रिय हैं। मेघाम्बर मेघकान्तिके सदृश है, वह श्रीराधारानीको अत्यन्त प्रिय है। कुरुविन्दनिभ रक्तवर्ण है तथा श्रीकृष्णको अत्यन्त प्रिय है।

दर्पण––मणिबान्धव (इसकी शोभा चन्द्रमाको भी लजाती है)

रत्नकंकती (कंघी)—स्वस्तिदा

सुवर्णशलाका—नर्मदा

श्रीराधाकी प्रिय सुवर्णयूथी (सोनजुहीका पेड़)—तडिद्वल्ली

वाटिका—कंदर्प–कुहली (यह प्रत्येक समय सुगन्धित पुष्पोंसे सुसज्जित रहती है)

कुण्ड––श्रीराधाकुण्ड (इसके नीपवेदीतटमें रहस्य–कथनस्थली है)

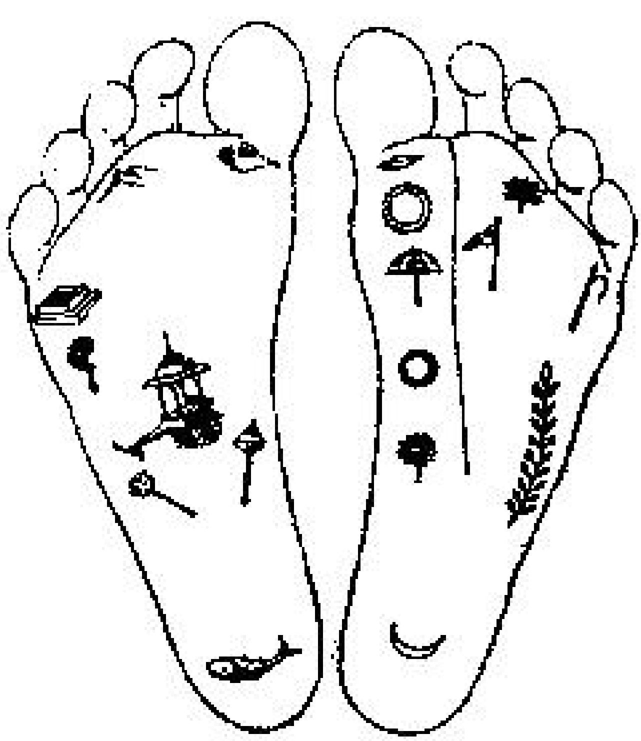
राग–––मल्हार और धनाश्री श्रीराधारानीकी अत्यन्त प्रिय रागिनियाँ हैं।

वीणा—श्रीराधारानीकी रुद्रवीणाका नाम मधुमती है।

नृत्य—श्रीराधारानीके प्रिय नृत्यका नाम छालिक्य है। रुद्रवल्लकी नामकी नृत्य–पटु सहचरी इन्हें अत्यन्त प्रिय है।

चरणोंमें चिह्न हैं–––

दहिना चरण बायाँ चरण



बायाँ पैर–––अंगुष्ठ–मूलमें जो, उसके नीचे चक्र, चक्रके नीचे छत्र, छत्रके नीचे कंकण, अंगुष्ठके बगलमें ऊर्ध्वरेखा, मध्यमाके नीचे कमलका फूल,

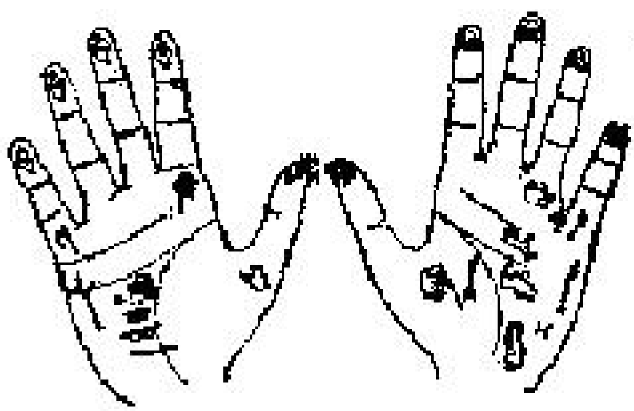
कमलके फूलके नीचे फहराती हुई ध्वजा, कनिष्ठिकाके नीचे अंकुश, एड़ीमें अर्धचन्द्र--मुँह उँगलियोंकी ओर। नीचे अंकुश, एड़ीमें अर्धचन्द्राकार चन्द्रमाके ऊपर दायीं ओर पुष्प एवं बायीं ओर लता--इस प्रकार कुल ११ चिह्न हैं।

दाहिना पैर--

अँगूठेके नीचे शंख, अँगूठेके पार्श्वकी दो उँगलियोंके नीचे पर्वत, अन्तिम दो उँगलियोंके नीचे यज्ञवेदी, शंखके नीचे गदा, यज्ञवेदीके नीचे कुण्डल, कुण्डलके नीचे शक्ति, एड़ीमें मत्स्य और मत्स्यके ऊपर मध्यभागमें रथ——इस प्रकार कुल ८ चिह्न हैं।

हाथोंके चिह्न--

दाहिना हाथ बायाँ हाथ



बायाँ हाथ——तीन रेखाएँ हैं। पाँचों अँगुलियोंके अग्रभागमें पाँच नद्यावर्त, अनामिकाके नीचे हाथी, ऊपरकी दो रेखाओंके बीचमें अनामिकाके नीचे सीधमें घोड़ा, जिसके पैर अँगुलियोंकी ओर हैं, उसके नीचे दूसरी और तीसरी रेखाओंके बीचमें वृषभ, दूसरी रेखाके बगलमें कनिष्ठिकाके नीचे अंकुश, अँगूठेके नीचे ताड़का पंखा, हाथी और अंकुशके बीचमें बेलका पेड़, अँगूठेके सामने पंखेके बगलमें बाण, अंकुशके नीचे तोमर, वृषभके नीचे माला।

दाहिना हाथ--तीन रेखा वैसी ही। अँगुलियोंके अग्रभागमें पाँच शंख, कनिष्ठिकाके नीचे अंकुश, तर्जनीके नीचे चँवर, हथेलीके मध्यमें महल, उसके नीचे नगारा, अंकुशके नीचे वज्र, महलके आसपास दो छकड़े, नगारेके नीचे धनुष, धनुषके नीचे तलवार, अँगूठेके नीचे झारी।

श्रीयुगलाष्टकम्

कृष्णप्रेममयी राधा राधा प्रेममयो हरिः।
जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम।। १।।
कृष्णस्य द्रविणं राधा राधाया द्रविणं हरिः।
जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम।। २।।
कृष्णप्राणमयी राधा राधाप्राणमयो हरिः।
जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम।। ३।।
कृष्णद्रवमयी राधा राधाद्रवमयो हरिः।
जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम।। ४।।
कृष्णगेहे स्थिता राधा राधागेहे स्थितो हरिः।
जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम।। ५।।
कृष्णचित्तस्थिता राधा राधाचित्तस्थितो हरिः।
जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम।। ६।।
नीलाम्बरधरा राधा पीताम्बरधरो हरिः।
जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम।। ७।।
वृन्दावनेश्वरी राधा कृष्णो वृन्दावनेश्वरः।
जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम।। ८।।

———

प्रार्थना

(राग आसावरी—तीन ताल)

हमारे जीवन लाड़िलि-लाल।
रास-बिहारिनि रास-बिहारी, लतिका-हेम तमाल।।
महाभाव-रसमयी राधिका, स्याम रसिक रसराज।
अनुपम अतुल रूप-गुन-माधुरि अँग-अँग रही बिराज।।
दोउ दोउन हित चातक, घन प्रिय, दोउ मधुकर, जलजात।
प्रेमी प्रेमास्पद दोउ, परसत दोउ दोउन बर गात।।
मेरे परम सेव्य सुचि सरबस दोउ श्रीस्यामा-स्याम।
सेवत रहूँ सदा दोउन के चरन-कमल अभिराम।।

(पद-रत्नाकर, पद सं० ३६)